मानतुङ्ग हिन्दी काव्यमाला के प्रचारक श्रीमानों से

लेखक और प्रकाशक की प्रार्थना

आदिनाथ की सुस्तुति पढ़ने को थी उत्सुक सर्व समाज,
उनके अनुपम गुण की माला पाठक! तुमको भेटूं आज।
भक्ताम्मर में भाव भरे ज्यों सागर का जल रोकेघट,
जग के पाठक! पढ़ें प्रेम से उनके कट जाते संकट।

धर्म की अमर कीर्ति संसार में स्थापित करने के लिये शास्त्र का लिखाना और उनका प्रचार जन साधारण में कराना यह कार्य समाज के श्रीमानों का सदा से रहा है। अन्त में धर्म ही सब को सहायक है और इसी से धर्म पर सर्वस्व समर्पण करने के लिये लोग तयार रहते हैं, इसी नीति के अनुसार मैंने समाज की सेवा करने में सर्वस्व अर्पण करना अपना ध्येय निश्चय कर लिया है मेरे पास कोई आर्थिक बल नहीं है जिसके कारण मैं समाज की सहायता लिये बिना मानतुङ्ग हिन्दी काव्य माला जैसे महत्व पूर्ण सुमनों के गुल दस्ते पाठकों की सेवा में रख सकूं। मेरा स्वास्थ्य मुझे क्षण २ में धोका दे रहा है। मेरे कुटुम्ब के पालन पोषण की चिन्ता का प्रश्न हल अब तक समाज के दानवीर पद पाने वाले श्रीयुत सेठ माणिकचन्द जी बम्बई के सहायता से ही विशेष

रूप में हुआ है । अब यह प्रश्न समाज के सामने आ रहा है मैं सदा से समाज का सेवक ही रहा हूं । और सेवा करते ही तन त्याग करूं ऐसा दृढ़ श्रद्धान है कई साल के प्रयत्न करने पर मैंने जो माला के लिये काव्य लिखे वे मेरे मर जाने पर रद्दी में डाल दिये जावेंगे अथवा श्रृंखला बद्ध भाषा में मेरे विचारानुसार वे प्रगट न हो सकेंगे इसी ध्येय की पूर्ति करने का मैंने यह अशक्य प्रयत्न किया है। चतुर श्रीमान् और विशारदों के सामने मेरी यह तुच्छ सेवा हँसी की वर्द्धक होगी । चूंकि यह समाज से परि-चित लघु सेवक जानता है कि मेरी प्रत्यक्ष सेवा मे श्रीमान और विशारद जिस तरह प्रसन्न रहे हैं उसी तरह मैं जिज्ञासु भाव से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न कर चुका हूं। आशा है कि अविरोध दृष्टि से मेरे कार्य के सहायक विशारद मित्र और दानवीर श्रीमान जरूर होंगे और अपनी उदारता इस लेखक व लेखक के कुटुम्ब के साथ रखेंगे काव्य माला में प्रकाशित ग्रन्थों के दूसरी आवृति में जो विद्वान सम्मति देंगे वे सम्मतियां बहु सम्मति पूर्वक कृतज्ञता सहित स्वीकार की जावेंगी ।

मुझ से इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि गुरुदेव मानतुङ्ग का नाम लेने से मेरी पद्यमाला में सारगर्भित कुछ तत्त्व का सामावेश अवश्य है जो कि साम्प्रति समाज में लघु सेवा के रूप में गौरवशाली होगा इसलिये समाज उन सारगर्भित तत्त्वों का स्वागत अवश्य करेगी ।

मानतुङ्ग हिन्दी काव्यमाला के संरक्षक व सहायकों के नाम माला अपने सुमनों में इस तरह प्रकट करेगी। एक हजार प्रति लेने वाले श्रीमान संरक्षक, पांच सौ प्रति लेने वाले अङ्ग संरक्षक, और सौ प्रति लेने वाले सज्जन सहायक संरक्षक, की श्रेणी में प्रकट किये जावेंगे। दस प्रति लेने वाले सभासद, और शेष के सज्जन माता व वहिने ग्राहक श्रेणी में, कृतज्ञता पूर्वक लिखे जावेंगे व उनका आभार प्रकट किया जावेगा।

विनीत लेखक

आशा है कि समाज के श्रीमान और विशारद वन्धु गण! तथा माताएं व वहिने इस पुन्य प्रचार के कार्य में देश के चारों ओर से हाथ वटाकर हमें उत्साह देंगे।

ताकि मैं अपने शिशुओं के पोषण का प्रश्न हल करती हुई उन्हें सुशिक्षित कर सकूँ।

मेरे पति का प्रयत्न श्रेयस्कर है चूंकि वे प्रवास के कारण अस्वस्थ और निर्बल हो रहे हैं मैं उन्हें उत्साह देती हूं आशा है श्रीमान पाठकगण! और विशारद वन्धुओं तथा माताओं व वहिनों के सन्मुख मेरी यह तुच्छ सेवा जरूर आदर और उन्नति पावेगी।

समाज से प्रार्थिनी-प्रकाशक
लेखक की धर्म पत्नी रामबाई

* मानतुङ्ग हिन्दी काव्यमाला *

भक्तामर और भोजभूप

[प्रथम सुमन लेनेवाले सहायकों के नाम]

१ श्रीमती सेठानी देशरानी बहू सेठ गुलाबचंद जी की पूज्य माता (सेठ दालचन्द जी की धर्म पत्नी) दमोह

२ सिंघई धरमदास नन्हूंलाल जी, सतना

३ सेठ जवाहरलाल जी बजाज (राईसेलाल जी) सागर

४ सिंघई पन्नालाल बंसीलाल जी, अमरावती

पुस्तक मिलने के पते—

१ उपदेशक पीताम्बर दास बांसा पोस्ट पथरिया (दमोह)

२ सम्पादक मानतुङ्ग हिंदी काव्य माला ठि० श्रीमान् सेठ लालचंद जी दमोह

३ श्रीयुत सिंघई गुलाबचंद जी नया बाजार दमोह

नोटः— सफा ६८ पद्य नं० ५७ से टिप्पणी के चिन्ह ‡ इस आकार के भिन्न-२ सफों पर दिये गये हैं जहां तक एक टिप्पणी पूरी नहीं हुई है वहां तक उसी चिन्ह से बोध कराया है बाद में दूसरे + इस तरह के चिन्ह से बोधित किया है। पद्य नं० ८९ सफा ७७ से सफा ७९ पद्य नं० ९५ के फूलकी टिप्पणी ८४ सफा के नीचे इस तरह के * चिन्ह से आई हैं सफा ८२ पद्य नं० १०४ से नं० १-२-३-४-५-६-७ दे जुदे २ सफों में १०३ सफा तक पूर्ण की हैं। अति प्रसङ्ग व विषयान्तर होजाने के भय से ऐसा प्रयत्न करना पड़ा। दूसरे लेखक को जो स्वतंत्र मत स्पष्ट दीखा टिप्पणी में लिखकर दर्शाया है। लोकमत होने पर दूसरी आवृत्ति में वे विषय यथा स्थान पर प्रकट किये जावेंगे।

विनीत— प्रकाशक

मेरा वक्तव्य

प्रिय पाठको! भक्तामर स्तोत्र के पढ़ने का प्रचार बिना किसी साम्प्रदायिक मतभेद के सम्पूर्ण समाज में है, बहुतेरे भाई बहिन इस पाठ के पढ़े बिना भोजन नहीं करते। भक्तामर के प्रत्येक काव्य पर मंत्र और उनके सिद्ध करने के यंत्र हैं पुस्तक बढ़ जाने के भय से हम उन्हें प्रकाशित नहीं कर सके। लेखक का पूर्ण विश्वास है कि भक्तामर मृत्यु का विजेता है जिनके हृदय में यह स्तोत्र विराजमान रहता है उनके पास कोई संकट नहीं आने पाते तथा आये हुए संकटों पर वे विजय पाते हैं। इस सिद्धान्त का अज्ञान दीर्घ कालसे प्रत्येक नर नारी के हृदय में अमर आदर पा रहा है, भक्तामर के हिन्दी छन्द की कई प्रतियें समाज में प्रच-लित हैं उनमें से चार प्रतियों के काव्य हमारे देखने में आये। पं० हेमराज जी और हर जीवन राय चन्द्र शाह के काव्य (तथा एक और भक्तामर दिल्ली वाले एक सज्जन बन्धु ने प्रकाशित किया था) पर विशेष चर्चा मेरे मित्र प्रेमीजी कर चुके हैं इस से उनके भक्तिभाव वश जो काव्य लिखे गये और जिन पाठकों ने पढ़े वे पाठक ही निर्णय कर सकते हैं कि वे कैसे सुरोचक और भाव पूर्ण हैं?

पं० गिरधर शर्मा का किया एक वे तुकी हिन्दी का भाव पूर्ण

काव्य है, उससे कई गुणा भाव पूर्ण काव्य श्रीयुत पं० नाथू-रामजी प्रेमी का है मेरे भक्ति भाव वश जब भक्तामर के हिन्दी पद्य खड़ी बोली में लिखे जा रहे थे तब उन्हों ने अनायाश मेरे प्रयत्न को देखकर मुझे देवरी में उत्साहित किया कि इसकी खड़ी बोली होना आवश्यक था। मैंने भक्ति भाव वश और वर्तमान शालाओं के छात्रों तथा हिन्दी के पाठकों का मन भागवत में वर्णन किये हुए भगवान वृषभ-नाथ के गुणों में सविनय भक्ति करने की ओर प्रवृत्त हो एवम् वे महर्षि मानतुङ्ग के काव्य कृति से परिचित होकर भगवान् वृषभनाथ के गुणों का परिचय कर अपने मन को निर्मल बनावें तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा। कई विशेष सम्मतियों के लिये हम अपने मित्र बाबूलाल दुबे मास्टर हिन्दी मिडिल स्कूल पथरिया व बाला प्रसाद मास्टर हाई स्कूल जबलपुर भाई रघुवर प्रसाद जी बजाज दमोह के भी कृतज्ञ हैं

अंत में मेरी हिन्दी पद्य रचना कैसी हुई और मैं भक्तामर के भावों का चित्र खींचने में कितना सफल हुआ इसका उत्तर चतुर पाठक गण ही दे सकेंगे।

विनीत, लेखक

उपदेशक पीताम्बर दास गुप्त

निवेदन

मानतुङ्ग गुरु की कृति का कीर्तन हो चारों वर्णों में,
पूर्ण विश्व को समझा देगी हिन्दी अपने शब्दों में।
जुदे जुदे देशों के भाषा भाषी पढ़ कर कष्ट हरें,
आदिनाथ कुलमनु भगवनका कीर्तन कर भव उदधि तरें।

प्रिय पाठको ! मैंने एक हिन्दी काव्य माला महर्षि मान-तुङ्ग हिन्दी काव्य माला के नाम से सम्पादन करने का विचार किया है माला का प्रथम सुमन आपके कर कमलों में प्रेम पूर्वक रखता हूं। दूजा सुमन भगवान् "विष्णु" और और वलि दैत्य है तीजा सुमन वर्णाश्रम धर्म और चौथा चौथा सुपथ दर्शक एवम् पांचवा भगवान् पार्श्वनाथ और कमठ है आगे की योजना प्रकट हुए सुमनों पर दी जावेगी काव्य तयार हैं चूं कि द्रव्य के आभाव और ग्राहकों की संख्या यथेष्ट न होने से कार्य रुका है मैं सन २४ से अस्वस्थ रहा इससे समाज की प्रत्यक्ष व परोक्ष सेवा नहीं बजा सका। अब पाठक ! मित्रों से निवेदन है कि यह मेरी अन्तिम सेवा प्रतीत होती है और आपको रुचिकर हुई है तो कृपा कर इस कार्य के सहायक बनकर और ग्राहक बने और

अपने मित्रों को ग्राहक बनावें इस तरह प्रयत्न करने पर एक हजार भाइयों के नाम ग्राहक श्रेणी में लिखे गये तो यह कार्य यथा साध्य चल सकेगा ।

महर्षि मानतुङ्ग के भावों के प्रचार का समाज ऋणी है उनके पूज्य प्रभाव पर समाज की अपूर्व भक्ति है इसलिये यह उनके नाम की काव्य माला समाज में अमर आदर पावेगी। मेरी अस्वस्थ दशा में पं० परमानंद जी अध्यापक जैनशाला दमोह व श्रेयांस कुमार शास्त्री ने इस निवेदन लिखने को प्रेरित किया इसके लिये उन्हें धन्यवाद है। श्रीमानों से प्रार्थना है कि वे माला में प्रकाशित होने वाले सुमनों की सौ सौ पचास २ प्रति अथवा इससे ज्यादह एक साथ पहिले से खरीद लें तो शालाओं में छात्रों को बांटने के लिये उन्हें सुभीता हो। और शास्त्र दान करने वाले श्रीमानों को काव्य प्रकट करानेके यश सम्पादन करनेका अपूर्व अवसर प्राप्त हो। उनके आर्डर मिलने पर हम उनका नाम कृतज्ञता पूर्वक पुस्तक पर प्रकट कर देंगे । और वे फोटो का खर्च व ब्लाक फोटोका बनवा देंगे अथवा अपना बना बनाया फोटो भेज देंगे तो उनका फोटो पुस्तक में प्रकट कर देंगे।

हिन्दी भक्तामर का परिचय

(१)

जैन जगतमें प्रचलित है यह काव्य संस्कृत भाषा में,
की उसकी तुकबंदी मैंने लिखकर हिन्दी भाषा में।
भक्ताम्मर में भाव भरे ज्यों सागर जल रोके गागर,
अर्पण करूं पाठकों के ! कर कमलों में करके आदर।

(२)

लेखक के मनकी अभिलाषा को पूरी करते रहते,
पा प्रसंग मिल सका देर हुई उत्तर दूं सुस्तुति रचते।
पूंछे ठाकुरदास सेठजी अनुचर ने क्या काम किया,
लेखकने लिख भेंटी सुस्तुति पढ़कर उन्हें प्रसन्न किया।

(३)

जगत प्रसिद्ध जैनकुल भूषण कहते दानवीर उनको,
थे ही माणिकचंद सेठ जी भूल न सकता मैं उनको।
"ताराचंद" भतीजे उनके करते भूषित निज कुलको,
धर्म प्रेम वात्सल्य भाव से भेंट करूं पुस्तक उनको।

(४)

सुस्तुति सुमन सामने रक्खा पढ़लेंगे उसको श्रीमान,
अनुचर की है यही प्रार्थना स्वीकृत करें धरें शुभ ध्यान।
मानतुंग मुनिवर की रचना भक्ताम्मर सुस्तोत्र महान,
उनके भाव पूर्ण चित्रों को लिख भेंटूं करता सन्मान।

प्रार्थना

उपकार और आभार

(५)

पाठकगण ! से करूँ निवेदन "वृषभनाथ थे जग के ईश,
नहीं अन्त उनके गुण का था कहा विश्व ने उन्हें महीश।
प्रलय कालके बाद विश्व को उनने शिक्षित करवाया,
इससे आदि नाथ कह करके उनको जगने अपनाया।

(६)

"आदि" प्रभू की सुस्तुति पढ़ने से दुख हो जाते हैं दूर,
मानतुंग मुनि का "भक्ताम्मर" पापों को कर देता चूर।
पाता काव्य ख्याति जगतमें निशि दिन भक्ताम्मर पढ़ते,
श्री वृषभेष प्रभू के सन्मुख खड़े इन्द्र सुस्तुति करते।

(७)

अतिशय भक्ति प्रेरित था मैं पड़ा कष्ट सुस्थिर था चित्त,
नही मिल सका निज मित्रों से अनुभव शून्य हमारा वित्त।
शुद्ध न कापी करवा पाया भूला भटका मेरा चित्त,
प्रथम प्रयत्न हमारा पाठक क्षमा करेंगे लिखूँ कवित्त।

(८)

विवश हुआ हूँ भक्तिभाव से करूँ प्रार्थना जग जन से,
भक्तामर को धरें कंठ में हरें पाप मन वच तन से।
अतिशय भूलें रह गई होगीं पाठक परखेंगे उनको,
सप्रमाण सूचित कर देगें दूँगा धन्यवाद तुमको।

(९)

देंगे हमें सूचना पाठक! पुनर्वार में शुद्ध करूँ,
स्वीकृत कर आभार आपका भूल सुधारूँ यश उचरूँ।
सुस्तुति आदिनाथ की हिन्दी भाषा में की प्रेमी ने,
मेरे कर में थी प्रति उनकी शुभ सम्मति दी श्री जी ने।

(१०)

श्रीयुत नाथूराम प्रेमी की कृति देखी जो हमने,
जगे सुबोध भक्तिवश लिख दूँ लिखने लगा भाव अपने।
पढ़ा करूं मैं काव्य प्रेम से लिखते जुगल किशोर भले,
मैं आभारी हूँ ही उनका मेरे वचन स्वयं निकले।

(११)

प्रेमी औ मुख्तार * युगल जनके लेखों का ले अवलम्ब,
उनकी काव्य कृत्तिके मुझ पर पड़े भाव पूरण प्रतिबिम्ब।
उनकी छाया उन्हें भेज दूं है अचरज मेरे मन में,
कहें वाह! करतूत करी क्या कैसे शुद्ध करें क्षन में।

मेरा निवेदन

(१२)

जगज्जनो को आदिनाथ ने था शुरु युग में समझाया,
उनको वृषभ नाथ कहते थे धर्म उन्होंने बतलाया।
हैं कृतज्ञ भूवासी उनके थे प्रभु सत्पथ के दर्शक,
ऋषि,मुनि,गणपति अवनी पतिने सुस्तुति करी त्रिजग हर्षक।

(१३)

विष्णु, बृहस्पति धरणेशों ने आदिनाथ की की सुस्तुत,
वाणी में बतलायी जग को करूं उसी को मैं प्रस्तुत।
इन्द्र गणेशों के वर्णन को मैं बालक लिखता भरसक,
सफल नपूरण हो सकता हूं भूलूंगा निश्चित वेशक।

---

*युगल महाशय के लेखों का मिलता रहा सदैव निमित्त,
पढ़कर मेरे मन में अनुभव हुवा पद्य लिखने को चित्त।
भाव पूर्ण हो शब्द श्रृंखला किया प्रबन्ध बना न मनोज्ञ,
पुनरा वृत्ति में आप शुद्ध कर देवें मुझको पूरण योग।

(१४)

मैं अल्पज्ञ भक्ति वश लिखता स्वर व्यंजन का कर उन्मान,
क्षमा प्रार्थी होता हूं मैं भूल शोध कर पढ़ें सुजान।
कवि बनने की करूं न आशा गौरव मैं चाहूं न कभी,
पढ़ें पद्य मैं शिशु जिज्ञासू न्यूतन युग के मनुज सभी।

आदिनाथ स्तोत्र का

[भावानुवाद]

लेखक उपदेशक पीताम्बरदास परवार सेठ माणिकचंद हीराचंद
जुबेलीबाग ट्रष्टफंड बम्बई

(१)

नम्र हुए देवों के मस्तक मणि मुकटों के पड़े प्रकाश,
उनपर प्रतिभा पड़ी प्रभू की पाप तिमर का हुवा विनास।
शुरू सुयुग में भवदधि से तारे देकर के निज अवलम्ब,
युग पद आदि प्रभू के वन्दू नहीं करूं मैं कभी विलम्ब।

(२)

शक्ति हीन हूं करूं प्रार्थना है अचरज करता प्रतिपाद,
भवदधि तारक प्रथम प्रभू के लिखूं सगुण का शुभ सम्वाद।
जिनकी उज्ज्वल कीर्ति अपूरब तीन लोक को दर्शाती,
सुस्तुति में जो तत्त्व इन्द्र ने किये प्रसव लघुमति गाती।

(३)

प्रभु का अर्चन करें देवगण मति विहीन मैं करता श्रम,
अर्थ अनर्थ न समझें बालक हठ पकड़ें भूलें विक्रम।
शशि के बिम्ब नीर में दर्शे पकड़ें शिशु अपने करमें,
विज्ञ न यत्न करें शिशु परिश्रम कर अचरज हँसतेमनमें।

(४)

कहे न जाते हैं वचनों से प्रभु के गुण शशि सम उज्वल,
कह न सके सुरपति वाणी में था असमर्थ वचन का बल।
प्रलय काल का पवन न रुकता जल के जन्तु लगे उछलन,
तरें न उदधि बाहु के बल से जगजन लेने लगे शरन।

(५)

परम पवित्र आपके गुण सब मैं वर्णन कर सकूँ न अल्प,
भूलूँगा प्रभु का गुण गौरव भक्ति विवश हो वर्णू अल्प।
सघन प्रेम से बल न विचारे शिशु की जननी हो सन्मुख,
लड़ने चली मृगी मृग पति से नहीं छुपाती अपना मुख।

(६)

लघुमति और विचक्षण जन जन करने लगें कभी उपहास,
विवश हुआ हूँ भक्ति भाव से सुस्तुति करने लगा प्रकाश।
कोकिल बोलें ऋतु बसन्त में मधुर शब्द आलाप करें,
फूली आम्र लताएँ जग में पिक के नियमित वचनझरें।

(७)

संग्रह करें जीव पापों का जग में जन्म मर्ण पाते,
यशोगान मैं करूँ आपका पाप शीघ्र ही हट जाते ।
काले भौंरे के समान तम होता निशिका काला रङ्ग,
पड़ें भूमि पर रवि की किर्णें निशितम भगे सूर्य के सङ्ग।

(८)

सज्जन जनका मन न हर सकूँ करूँ न कविता कवि बनके,
प्रभु प्रसाद गुण से कवि कहते काव्य बने सबही मनके ।
पाप विनाशक सगुण प्रभू के गूँथे लघुमति ने मनके,
कमल पत्र पर पड़े बिन्दु जल मोती के समही अँनके ।

(९)

सुस्तुति की तो बात दूर ही सर्व दोष को करती दूर,
कथा मात्र के पढ़ लेने से हो पापों का चकना चूर ।
सदां भूमि से दूर सूर्य कीं किर्णें पड़ीं सरोवर में,
खिले कमल के दल प्रतिभा में फैली प्रभा भूमिभरमें ।

(१०)

परम गुणों से आप विभूषित अचरज कहूँ नही इसको,
स्वामि न सेवक की तुलना कुछ करते सुख देते सबको ।
जगजन सेवक स्वामि भेद को रखते सुखी नहीं करते,
उनका विभव निराला दर्शक सेवक दुखी बने रहते ।

(११)

प्रभु को कर तल धरें देखकर मेरे निमिषि नही पल्टे,
तोप न अन्य जगह पा सकते इससे नैन नही उल्टे।
शीतल नीर प्रभा शशि सम जो पीकर क्षीरो दधि का जल,
कौन मनुष्य करेगा इच्छा पियें उदधि खारे का जल।

(१२)

अनुपम शान्ति स्वभाव आपका तीन लोक के तुम भगवन्,
सुन्दर शुद्ध अणू थे जितने उनसे बना आपका तन।
जगमें इतने थे अपूर्व अणु थी उनकी संख्या परिमित,
आप समान न रूप दूसरो दीख न पड़े कहीं अंकित।

(१३)

तीन लोक में मिले न उपमा प्रभु के सन्मुख दूं किसकी,
सुर, नर उरग देख शशि हर्षे प्रतिभा मंद पड़ीं उनकी।
सूखे पान पलाश श्वेत सम शशि का दिन में था आभास,
दीखे रवि के सन्मुख थे शशि मलिन कलंकित प्रभान पास।

(१४)

हे ! त्रिलोक पति तुम निर्मल हो जैसे पूरण चन्द्र विमल,
पूर्ण रूपसे भरे लोक में प्रभु के गुण अतिशय निर्मल।
मिला गुणों को एक सहारा जगन्नाथ का जग भर में,
उन्हें न रोक सकें नर दानव करें प्रवास विश्व भरमें।

(१५)

कर न सकूं अचरज कुछ इसमें आप अचल मन चल न सके,
मन को हर न सकीं सुर देवीं नचीं रूप सुन्दर धर के।
प्रलय काल में पवन चले वह कर देता भू को खडित,
अटल सुमेरु नही चल सकता होता नही कभी कम्पित ।

(१६)

देखा दीपक बिना तेल का धूम न वाती करे प्रकास,
तीन लोक में हो उजयाला फैलाता निशिदिन समभास।
चले न वायू का वल जिस पर चाहे पर्वत चलें सभी,
स्वयं दीप प्रभु जग के दर्शक आप अपूरव लखे अभी ।

(१७)

क्षण भर प्रभा न भू से हटती राहु न रोके छाया धूप,
एक साथ ही तीन लोक में करे प्रकास पड़े मालूम ।
मेघ पटल के छुपे उदर में रवि का तेज सदां छिपता,*
हे प्रभु जगत प्रकाशक हो तुम भानु न गौरव पा सकता ।

(१८)

सदां प्रभू की प्रभा प्रकाशित मोह तिमर का हरण करे,
मेघ न ढकते राहु न ग्रसते प्रभु के सुमुख सदां उजरे ।
खिले कमल के सदृश प्रभु का सुमुख लोक को करे प्रकास,
अनुपम प्रभा जगत में दर्शी चकित हुए शशि प्रभु के पास ।

---

* मेघ पटल में छिप आता है रवि का तेज मंद पड़ता,

(१९)

प्रभु के मुख की प्रभा विश्व का तम हरती दर्शी निर्मल,
हुए निरर्थक रवि,शशि दोनों क्यों जनते निशि दिन निष्फल।
पक जाने पर अन्न खेत में मेघ पटल नभ में गर्जे,
ऊसर भू तज कृषि पर वर्से बिना कार्य जगने वर्जे।

(२०)

हे मुनिगण विज्ञान आपका स्वपर भाव का करे प्रकास,
है ही नही ज्ञान वह अणु भर हरि हर ब्रह्मादिक के पास।
जैसे महा रत्नकी कान्ती जग में गौरव को पाती,
मिले न ज्योति कांच में अणु भर भाव शून्यता दर्शाती।

(२१)

मैंने हरि हर को भी देखा उनका दर्शन श्रेष्ठ कहूँ,
जिनें देख कर परखें तुमको धरूँ तोष मन में अव हूँ।
नहीं करूँगा उनका दर्शन पल्टे मेरे भाव पुनीत,
पुनर्जन्म में सुस्मृति रक्खूँ वे न सकें मेरा मन जीत।

(२२)

सदा सैकड़ों सुभगा नारीं शिशु समूह को निर्मातीं,
प्रभु सम सुत न प्रसव कर सकतीं जननि न प्रभु की बनपातीं।
देखी सुन्दर दिश, विदिशायें रक्ख पल्टें नक्षत्र अनेक,
करे प्रकास प्रभान सूर्य को माता पूर्व दिशाही एक।

(२३)

मुनिजन कहें आपको ईश्वर परम पुरुष वे करें प्रमान,
रवि की प्रभा विनाश करे तम त्यों तुम प्रगट करो विज्ञान।
भेंटे भले प्रकार तुम्हें जब योगी मृत्यु विजय करते,
तुम्हें त्याग दें मिले न शिव पथ नहीं मोक्ष सुख पा सकते।

(२४)

तुमें साधु जन कहें हमेशा अक्षय, अनुपम विमल अनन्त.
आदि अचिन्त्य, असंख, सन्त विभु केवल ज्ञान प्रगट अर्हन्त।
ब्रह्म अनेक येक परमेश्वर योगी काम केतु घाते,
योग रीति के विज्ञानी प्रभु तुम जिनेश जग दर्शाते।

(२५)

बुद्ध देव कह कर पूजे थे गणधर ने प्रभु के उपदेश,
तीन लोक को सुखी बनाते कहा जगत ने तुम्हें महेश।
वर्णन करो मोक्ष के पथ का दर्शक तुम्हें कहें ब्रह्मा,
शब्द, अर्थ गुण पूर्ण सुबोधित पुरषोत्तम तुम परमात्मा।

(२६)

तीन लोक का हरण करो दुख भवदधि तारक तीर्थ नमूँ,
भूतल में ज्यों अमल रत्न सम दोष न मल मैं विमल नमूँ।
परम पुरुष तुम तीन जगत के परमात्मा पर्मेष नमूँ,
अति अथाह जग जल भव सागर बड़वा नल सम शोष नमूँ।

(२७)

सर्व सुगुण संग्रह कर आए प्रभु के तन में करें निवास,
सर्व क्षेत्र की रोक करें गुण मिला न दोषों को आवास।
कर अभिमान भगे, स्वप्ने में देख न सकते प्रभु की ओर,
जग में देव अनेक मिलें, लें आश्रय अचरज करें न चोर।

(२८)

तरु अशोक के तलें सुमुन्नत प्रभु का निर्मल तन दर्शे,*
चार दिशा में प्रभा प्रकाशित अनुपम रूप त्रिजग हर्षे।
नभ में किर्णें खिलें विविध रङ्ग मेघ समीप धरें बहुरूप,
तमको हरण करे रवि त्यों ही प्रगटे बिम्ब दिवाकर रूप।

(२९)

सिंहासन में मणि की किर्णें चमकें द्युति ज्यों बने विचित्र,
उस पर आप धरें पद्मासन कनक वरण तन सदा पवित्र।
नभ में सुन्दर तना चँदोवा उसकी किर्णें करें प्रकास,
अति उत्तंग उदयाचल पर ज्यों रवि रखता सुन्दर आभास।

(३०)

कुन्द सुमन सम उदित चन्द्र के हेम वर्ण है प्रभु का रूप,
ढोरें चमर अमर ले करमें उनमें मोती जड़े अनूप।
ऊँचे तट सुम्मेरु हेम पर वर्षें जल लहरें चमकीं,
निर्मल झिरनों की जलधारा शशि सम उदय धरें अँनकीं।

---

* अतिशय ऊंचे तरु अशोक के तलें प्रभू का तन दर्शे,
(ऐसा भी पाठ सुस्पष्ट है)

(३१)

शशि समान रमणीक आप प्रभु हरण करो तुम सूर्य प्रताप,
मोती की श्रेणी से सुंदर अतिशय रचना हरती ताप।
तीन छत्र प्रभु के मस्तक पर हैं जग जनके मन हर्षक,
प्रभु परमेश्वर तीन लोक के हैं ही प्रगट करें दर्शक।

(३२)

उच्च और गम्भीर नाद से दशों दिशा को पूर्ति करे,
तीन लोक में प्रभु प्रसंग शुभ सम्मति दे यश को उचरे।
नभ में दुंदभि बजी जोर से सूचित करती सुरपुर में,
धर्म विजय को निकले जिनवर प्रगट घोषणा थी उसमें।

(३३)

गन्धोदक अणु विन्दु वर्से निर्मल मंद पवन प्रेरे,
पारिजात मंदार कल्प तरु खिलेसुमन जहँ बहुतेरे।
नभ से वर्षें सुमन ऊर्ध्वमुख दिव्य ध्वनि में जगत रमें,
मानो आप वचन जो कहते मूर्ति बनें बैठे मन में।

(३४)

मिली न आप समान कहीं द्युति की तुलना प्रतिभा परखीं,
अगनित रवि की तेज प्रभायें समसर कर न सकी निरखीं।
मिले न प्रतिभा तीन लोक में प्रभु के भा मण्डल के सम,
शशि से अतिशय शान्ति मनोहर जीते मुखकी छवि निशितम।

(३५)

स्वर्ग, मोक्ष पथ को दर्शाते गृही यती के तत्त्व विधान,
तीन लोक में आप चतुर हैं करते पूरण धर्म बखान।
करे परिणमन जग भाषा में जो साहित्य करो तुमदान,
जननि बने वह विशद अर्थ की जो वाणी में कहो विधान।

(३६)

कमल खिले ज्यों स्वर्ण प्रभा सम आप मनोहर विमलअनूप,
उछलें नख की दीप्ति भूमि पर चारों ओर बनें तद्रूप।
करते गमन चरण जहँ पड़ते हर्षे भूमि देख वृषभेष,
रचें देवगण फूल कमल के उनसे अधर चलें सर्वेश।

(३७)

करते प्रभु उपदेश धर्म का पाते विभव आप स्वयमेव,
सभी विभूति अपूर्व प्राप्त थी वैसी अन्य न पाते देव।
ज्यों रवि प्रभा प्रकाश करे जब निशितम भगे प्रभात खिले,
तारागण में प्रभा न वैसी अणु आभास प्रभास मिले।

(३८)

मद से मलिन हुए कामातुर गंडस्थल से झरें मतंग,
मधुकर गूंजे कोप बढ़े ज्यों शोर करें वे बनें उतंग।
ऐरावत सम अति उद्धत गज सन्मुख उनके आजाते,
प्रभु के सेवक डरें न उनसे निर्भय उनपर चढ़ जाते।

(३९)

जो मद से उन्मत्त गजों के मस्तक नख से करे विदीर्ण,
पड़े भूमि में सुन्दर मोती रक्त सफेद रुधिर अवतीर्ण।
भरी छलांग घात करने को मृग पति ने उनको पकड़े,
पंजो बीच पड़े बच जाते प्रभुपद सेवक निडर खड़े।

(४०)

प्रलयपवन सम प्रेरित ज्वाला बढ़ी झार दीखे विकराल,
जले भूमि पर निर्मल नभ में उड़ें फुलिङ्ग अधूम त्रिकाल।
हा! ऐसी भी प्रबल आग जो जग के सन्मुख लगे कहीं,
तुम गुण गौरव भक्तिनीर से शान्ति करें जन अग्नि वहीं।

(४१)

पिक के कंठ समान श्याम रक्त लाल नेत्र भय करें विकल,
ऊँचे फण कर क्रोध भरें वे फूंसे सन्मुख हुए चपल।
ऐसे सर्पों के फण पर पग पथ में रखते चलें निडर,
भक्ति प्रभू की नाग प्रदमनी जड़ी उन्हें चढ़ते न जिहर।

(४२)

जो तुरंगगण रण में लड़ते घन सम गर्जें गज अतिशय,
तीक्षण शस्त्र लिये सेना नृप सन्मुख लड़ता हो निर्भय।
तुम गुण गान करें रणवर्ते दूर भगे सेना नृप की,
जैसे उदित दिवाकर किर्णे करतीं घात निशा तम की।

(४३)

बरछी से गज गणके सिर जहँ छिदें वहें लोहू की धार,
तरें वीर जन वेग न रोकें शीघ्र लड़ें वे हरें कुवार।
करें पराजय रण को जीतें वैरी का परिहार करें,
तुम चरण कमल वन के आश्रित जो रहते रणमें विजय करें।

(४४)

मगर,मच्छ,व्याकुल करदेते पड़े उदधि में करें प्रलाप,
उगलें वड़वा नल आगी को फैल रहा उनका आताप।
बीच उदधि में पड़ी जहाजें डिगी लहर पर ही थिर थीं,
करते पथिक प्रभू की सुस्तुति तरीं जहाजें निर्भय थीं।

(४५)

रोग जलोदर की पीड़ा से जिनके कुबड़े हुए शरीर,
सोच धरें वे रहें निराशित सहें मर्ण दुख बने अधीर।
तुम पद पंकज रज अमृत सम जो मानव तन में चर्चे,
उनका बने शरीर-अनूपम कामदेव सम रूप जचे।

(४६)

जकड़े अनीदार सांकल से कीले चर्ण,कंठ,नख,शिख,
जंघा छिली करें नर क्रन्दन थके कंठ भुज सके न लिख।
जपें आप का नाम निरन्तर उनके मिट जाते सन्ताप,
वंदीगृह के वन्धन टूटें अभय रहें वर्तें निष्पाप।

(४७)

मृगपति, गज, उन्मत्त, सर्प, भय, आगी, युद्ध महोदर रोग,
वारिधि, अनल, अपार जलोदर, कारागार कठिन सम्भोग ।
उनके भय भाग जायं शीघ्रही जो सुस्तुति को पढ़ें हमेश,
यश गुण गान आप का स्वामी करते दुक्ख न रहता लेश ।

(४८)

प्रभु के सुगुण सुमन सम फैले संग्रह कर गूंथी माला,
मिले सुमन सम वर्ण अनोखे करूं भक्ति पहनूं माला ।
पढ़ें सुजन सौभाग्य शालि जन धरें कंठ में बने विमल,
अवश लक्ष्मी मिले उन्हों को मानतुंग सम हों निश्चल ।

(४९)

हे ! योगीश्वर मानतुंग मुनि लिखे आपने भाव पवित्र,
आदीश्वर प्रभु स्वयं स्वयंभू के गुण का दिखलाया चित्र ।
सम्यक श्रद्धा से भक्ताम्मर काव्य आपने लिखा अभय,
कृत्ति आपकी का कृतज्ञ हूँ हे ! गुरु तुंग करो निर्भय ।

(५०)

मन वच तन से चाहूं निशि दिन आदीश्वर की भक्ति करूं,
मानतुंग मुनिवर की कृति को करता प्रगट ध्यान धरूं ।
शक्ति न थी प्रभु भक्ति वसी मन ने आज्ञा दी कलम चली,
गाने को पीताम्बर बैठा लिखी प्रभू की भक्ति भली ।

(५१)

साम्प्रति युग के प्रेमी ! पाठक बोली खड़ी पढ़ें सुस्पष्ट,
पद्य रूप हिन्दी की भाषा करती नहीं अर्थ को नष्ट ।
मन की रोचक करी न कविता प्रभु के गुण गाये हमने,
ललित न काव्य प्रास मिले कुछ था उत्सुक हिन्दी करने ।

(५२)

मंगल मय मंत्रो से भूषित हो भक्ताम्मर जिसको सिद्ध,
विविध समृद्धि प्राप्त करते वे पाते लक्ष्मी जगत प्रसिद्ध ।
सांकिनि, डांकिनि, भूत, प्रेत के उपसर्गों को करते दूर,
संकट हरण करे भक्ताम्मर करे पाप का चकना चूर ।

भावार्थ लिखने का परिचय
और
मेरे जनक की प्रेरणा

---

(१)

कर्मभूमि का राष्ट्र बना कर किया प्रभू ने जग निर्मल,
सविनय सीस झुकाता हूं मैं पूजूं उनके चरण कमल।
प्रभु की प्रतिभा पड़ी विश्व में करती पापों का उपशम,
स्वयं खिलेंगे सुमन पाठको! पढ़ें प्रभू के गुण अनुपम।

(२)

युगल सहोदर हँसे परस्पर खड़े जनक के थे सन्मुख,
उनने कहा अनुज से मेरे प्रभु की सुस्तुति बनी प्रमुख।
प्रेरित किया युगल शिशुओं को कहा जनक ने पढ़ो इसे,
पढ़ने लगा सहोदर मेरा रामचन्द्र मैं कहूँ उसे।

(३)

बैठे एक साथ पढ़ने को लिखे पद्य में थे भावार्थ,
सुस्तुति प्रभु की लिखी जनक ने उसको पढ़कर हुए कृतार्थ।
भाव पूर्ण भावों से भूषित पा भावार्थ भाव आदर्श,
पोथी लेने लगे पढ़ेंगे होगा प्रतिदिन अतिशय हर्ष।

(४)

सूचित किया जनक ने मुझको है साहित्य राष्ट्र की वस्तु,
शिशु रखदे तू जग के सन्मुख जग जन के पढ़ने की वस्तु।
विनय भाव से खड़ा हुआ हूं प्रभु की सुस्तुति लेकर के,
प्रेमी मित्रों! की सेवा में देता हूं प्रति प्रति करके।

(५)

जैन जगत में शिशु शिक्षा के प्रचार का यत्न करें,
ताराचंद, सेठ बम्बई के उनका यश प्रतिदिन उचरें।
प्रथम सुमन सुस्तुति का सविनय अर्पण करता हूं उनको,
नेता कुल भूषण के वंशज दूं सन्मान प्रथम तुमको।

विनीतः—

प्रकाशचन्द विद्यार्थी

सतर्कसुधा तरङ्गिणी

जैन पाठशाला, सागर (सी. पी.)

मेरा प्रयत्न

(१)

सविनय करूं मैं प्रार्थना भावार्थ के सम्बन्ध में,
परिचय करें पाठक ? सभी कवि काव्य पद्य प्रबन्ध में।
वृषभेष की सुस्तुति लिखी साम्प्रति समय को देखकर,
बोली खड़ी पढ़ते सभी सुस्पष्ट अर्थ विलोक कर।

(२)

है संस्कृत में काव्य यह भक्ताम्मर के नाम से,
अनुपम सु गौरव को धरें पढ़ते सभी सन्मान से।
मुनि मांनतुङ्गमुनीश ने रचना करी जिस काव्य की,
उस भाव पूर्ण सुकाव्य की बोली खड़ी आलाप की।

(३)

प्रिय पाठको मैंने किया है यत्न सन्मुख आपके,
उस काव्य के भावार्थ को दो पद्य में सुस्थाप के।
लघु शक्ति पूर्ति न कर सकी प्रति काव्य के प्रति पद्य की,
दो पद्य में संग्रह किया ली चाल मैंने गद्य की।

(४)

प्रभु के सुगुण अवलोक कर शायद पढ़ें पाठक इसे,
देंगे उलँहना वेग से निर्गन्ध फूल रचे किसे।?
मैं प्रार्थना हू कर चुका कवि की न मुझ में शक्ति है,
प्रामर्ष प्रभु गुण का मिला गाती हमारी भक्ति है।

(५)

इस भाव पूर्ण सुकाव्य की हिन्दी पढ़ी संसार ने,
उसकी पड़ी प्रतिभा विमल मन हर लिया आभार ने।
थे ही धुरंधर वे सुकवि प्रिय हेमराज महत्पुरुष,
प्रेमी, सुकवि आदिक चतुर के सामने यह पुष्प तुष।

(६)

मैंने खड़ी बोली लिखी होगी अशुद्ध सदोष भी,
मेरा प्रयत्न प्रथम अहो ? देखा न हिन्दी कोष भी।
की शीघ्रता उत्साह ने उत्सुक हुवा करता प्रगट,
क्रमशः लिखूँ पहुचूं कभी निर्दोष हिन्दी के निकट॥

विनीत, लेखक

आदिनाथ स्तोत्र

[भक्ताम्मर का पद्य में भावार्थानुवाद]

---

(१)

जग जन नमन करते उन्हें थे आदिप्रभु ही प्रथम में,
निज हस्त का अवलम्ब दे तारे भवोदधि से हमें।
मणि से जड़े सुर के मुकट वे नमन करने को बड़े,
अतिशय प्रकाशित हुयिं मणी ज्यों शीस चरनोंमें पड़े।

(२)

युग के शुरू में ही जिन्होंने जगत को आश्रय दिया,
जग जन फँसे थे मोह में उस मोह का मर्दन किया।
सुर के मुकट की मणि प्रभा पर प्रभू की प्रतिभा पड़ी,
भागे सुरों के मोहतम, उन पर अपूर्व प्रभा पड़ी।

(३)

अल्पज्ञ और अशक्त मैं सन्मुख प्रभू के हूँ खड़ा,
करने लगा हूं प्रार्थना दीखे यही अचरज बड़ा।
बीती अनादि कथा कहूं वृषभेष के सन्मुख खड़ा,
प्रभु पतित को पावन करो सेवक शरण में आ पड़ा।

(४)

निर्मल सुगुण भूषित प्रभो! तुमको कहा नरबृन्द ने,
सुर उरग सुस्तुति कर थके कीर्तन किया था इन्द्रने।
थे तत्त्व उसमें कीर्ति के जो इन्द्र ने वर्णन किये,
लघुमति प्रसव करता उन्हें भ्रम तम भगाने के लिये।

(५)

सुर बृन्द अर्चन कर थके मति हीन मैं परिश्रम करूं,
हूँ ही शिशू समझूं न क्रम प्रारम्भ कर व्यति क्रम करूं।
शशि की प्रभा जल में पड़ी लखते शिशू शशिबिम्ब को,
पकड़ें शिशू पाले न शशि लें नीर के अवलम्ब को।

(६)

जलमें पड़े शशिबिम्ब को पकड़ें शिशू उद्यम करें,
करते न यत्न सुबोध जन समझें तरंग प्रभा धरें।
बालक समान प्रयत्न मेरा हर्ष से सुस्तुति करूं,
समझें विशारद तत्त्व को मैं भक्ति वश कीर्तन करूं।

(७)

शशि से अधिक निर्मल सुगुण हैं आपके जग ने कहे,
मुख से न वर्णन कर सके जब इन्द्र ही चकरा रहे।
अकलंक प्रभु हैं ही अहो! परखें जगत जनने उन्हें,
शशि दीखते सकलंक थे उनको कलंकित ही गिनें।

(८)

जल जन्तु उछलें वेग से चलता मलय मारुत अहो,
उछलें जगत जन भक्ति से गुण के उदधि ने भुज गहो।
तरने लगे वे वेग से तारक प्रभू की भक्ति थी,
उद्देश सेवक के फले प्रभु भक्ति की ही शक्ति थी।

(९)

प्रभु के पवित्र सगुण अमित उनका न वर्णन कर सकूं,
अल्पज्ञ अल्प न कह सके गुणगान करना ही तकूं।
भूला विकल्पों में पड़ा प्रेरित हुवा हूँ भक्ति से,
अनुराग दीरघ में धरूं कर यत्न अतिशय शक्ति से।

(१०)

भूलें जगत जन प्रेम में दीरघ प्रयत्न करें अहो,
मैं भक्ति वश भूला सभी सुस्थिर न निज बल पर रहो।
गो वत्स की रक्षक जननि हो सिंह के वह सामने,
डरती न मृगपति से मृगी सन्मुख लगी आलापने।

(११)

करता अशक्त प्रयत्न मैं प्रेरित हुवा हूँ भक्ति से,
कवि की न कर सकता सभी अनभिज्ञ हूँ निज शक्ति से।
समझूं न अर्थ अनर्थ को प्रभु के सगुण करता प्रगट,
लघुमति विशारद जन हँसेंगे हो रहा संशय निकट।

(१२)

शब्दार्थ भूला हूं अवश कहने लगा होकर खड़ा,
सुस्तुति न मनरंजन बनी मैं सामने प्रभु के खड़ा।
विद्वान मैं हूँ ही. नहीं क्रम भंग का दूषण बड़ा,
फूली लतायें आम्र कीं पिक शब्द सुन्दर भड़पड़ा।

(१३)

जन्मन मरण के दुख सहे थे पाप के संग्रह किये,
गुण गान करता हूं अहो! निष्पाप होने के लिये।
रङ्ग पाप का काला कहा पापी हुवा मैं हूँ अधम,
निर्मल सुगुण प्रभु के कहूं मुझे सुपथ दर्शक धरम।

(१४)

निर्मल प्रभू द्युति को धरें रवि की प्रभा सम खिल रहे,
निशितम लगा होने विलय प्रभु पाप के नाशक कहे।
तम को धरें काली निशा मकरंद सम जग जन फँसे,
प्रभु मूर्ति रवि के सम खिली भ्रम तम भगे सेवक हँसे।

(१५)

जल बिन्दु कमलों पर पड़े मोती समान प्रभा धरें,
गाने लगा प्रभु के सुगुण मेरे बचन सुन्दर झरें।
निर्मल विराग धरें प्रभू मेरी सुनें सुस्तुति सभी,
करता ग्रहण प्रतिबिम्ब को दर्पण न रागी हो कभी।

(१६)

मन का न रंजन मैं करूँ मैंने न काव्य किया कभी,
सुस्तुति रची अल्पज्ञ ने उत्तम कहें सज्जन सभी।
गौरव प्रभू की भक्ति थी गाया सुयश साहित्य ने,
कहते सभी कवि काव्य मन के हैं सही उत्तम बने।

(१७)

प्रभु का सुयश गाने लगा प्रभु दूर रहते हैं सदा,
निर्दोष गुण हैं ही सभी सर्वज्ञ पद पाते सदा।
अतिशय प्रभू की भक्ति से आते न पाप समीप भी,
आवास प्रभु का मोक्ष में पड़ता प्रकास नगीच भी।

(१८)

सर्वज्ञ समदर्शी प्रभो! हैं दूर दर्शी दूर भी,
अतिशय अपूरव भक्ति से परिचित हुवा मैं खूब भी।
रवि की खिलीं किर्णें पड़ीं फूले कमल के दल अहो,
प्रभु के शरण से भूमि पर जग ने सुपथ पर्खो गहो।

(१९)

अचरज न जग जन ही करें हो विश्व के भगवान तुम,
पाये सभी गुण आपने कर भक्ति तर जाते अधम।
जग जन विभव पाते सभी करते न सेवक को सुखी,
देते न वे अपना विभव सेवक रहे उनके दुखी।

(२०)

जग जन न समदर्शी हुए है आत्म गौरव की कमी,
संसार के वैभव क्षणिक प्रभु की न कर सकते समी।
सेवक स्वामी भेद को रखते जगत जन सामने, *
पावें अमर सुख को सभी समझे बराबर आपने।

(२१)

दृग की निमिषि पल्टे नहीं भगवान को सन्मुख लखूं,
फैली अशान्ति सभी जगह सन्तोष शान्ति तुम्हें लखूं।
मुख शान्ति की मूरत प्रभू पर्वी जगत में आपकी,
पल्टें न दृग मेरे अहो! निरखें सुछवि जिनराज की।

(२२)

मेरे द्रगों में छा रही अनुपम सुमूरत आपकी,
मन पर पड़ी प्रतिभा विमल मन में प्रभू की थापकी।
पी क्षीर दधि का जल विमल आशा नहीं रखते चतुर,
खारे उदधि का जल पियें हो बूंद उसको क्या मधुर?।

---

* भूले जगत जन आत्म गौरव सुयश अपयश छारहो,
रखते परस्पर भेद वे सेवक न वैभव पा रहो।
सेवक स्वामी भेद से सबके न सुक्ख समान हो,
है आप समदर्शी प्रभो! करते निजात्म समान हो।

(२३)

प्रभु के समान न रूप दूजा है न तीनों लोक में,
उपमा न तन की दे सकूं अनुपम लखूं उपयोग में,
सुन्दर बिशुद्ध अणू दिखे करती प्रसव भूमी रतन,
थे ही अणू परिमित कहूं रचती प्रकृति प्रभु का वदन ।

(२४)

परिमित अणू उतने मिले थे ही न ज्यादह लोक में,
निर्मल अणू संग्रह किये थे ही प्रकृति ने लोक में ।
थे ही अणू उतने अहो ! आये सभी नर लोक में,
दिखता न दूजा तन हमें प्रभु के समान त्रिलोक में ।

(२५)

निर्मल बनीं मुख की प्रभा समसर न शशि ही करसके,
पड़तीं प्रभायें मंद सब अनुपम प्रभू को कह चुके ।
धरणेन्द्र, इन्द्र, कुँवेर ने अतिशय विमल प्रभु को कहा,
गुण गान गाये भक्तिसे शशिसे अधिक निर्मल कहा ।

(२६)

शशि बिम्ब देखा था मलिन उसको कलंकित ही कहा,
करता न पूर्ण प्रकाश वह रवि तेज में छुपता रहा ।
पाता न शशि उपमा अधिक रवि तेज सम प्रभु को कहो,
सूखे पलास श्वेत सम शशि सूर्य के सन्मुख कहो ।

(२७)

शशि के समान स्वयं विमल प्रभु के सुगुण त्रैलोक में,
हैं ही सघनता से भरे मैंने लखे उपयोग में।
सम्पूर्ण गुण कहने लगे पाये शरण प्रभु के भले,
विचरें खुशी से विश्व में प्रभु के निजाश्रय में पले।

(२८)

गुण के समूह चले अहो! आये प्रभू के पास में,
प्रभु का मिला आश्रय उन्हें बोले सुगुण आवास में।
रोके न रुक सकते कभी पाते न त्रास प्रवास में,
विचरें खुशी से विश्व में वर्तें कुशल आवास में।

(२९)

प्रभु का अचल मन है अहो! आश्चर्य कुछ इसमें नहीं,
आईं अनेकों देवियाँ थीं रूप कीं सुन्दर कहीं।
सुर देवियों नें नैनभर निरखें प्रभू के रूप को,
मन को न हर पाईं प्रभू के देखतीं चिद्रूप को।

(३०)

भूकम्प होते भूमिपर कम्पित शिखर होते सभी,
है ही अकम्प सुमेरु गिरि सहता प्रलय मारुत तभी।
थीं कामिनी सुर देवियाँ गानें लगीं वे कीर्तियाँ,
प्रभु, मेरु गिरि सम थे अटल चकरा गईं सुर देवियाँ।

(३१)

वाती न तेल धुआँ अहो ! करता प्रकाश प्रदीप था,
फैला उजेला लोक में निशि दिन समान समीप था।
विज्ञान दीपक आपका त्रैलोक को दर्शा रहा,
जग जन सुपथ लखने लगे वह विश्व को हर्षा रहा।

(३२)

विचलित शिखर होते अहो ! प्रेरित पवन से गिरि हले,
विज्ञान दर्शक दीप प्रभु का पाप के तम को दले।
परखें जगत जन ने सुपथ पाकर अमर पदवी रहे,
सुरदेव कीर्तन कर चुके प्रभु को अमर दीपक कहे।

(३३)

होता विलुप्त न राहु से छुपता न मेघों से कभी,
फैली प्रभा प्रभु की सदा प्रभु के सुमुख लखते सभी।
विज्ञान से भूषित प्रभू के सामने रविद्योत था,
छुपजाय रवि क्षण मात्र को जगनें कहा खद्योत था।

(३४)

नभ में घुमड़ते मेघ जब दूषित हुए रवि तेज थे,
उपमा न रवि की दे सकूं थे तेज पर निस्तेज थे।
अज्ञान तम त्रैलोक में चहुँ ओर से छा ही रहा,
फैला जगत में भ्रम अहो ! रवि को अतेज जता रहा।

(३५)

करता सदैव प्रकाश को जिसकी न ज्योति मलीन हो,
प्रभु मोह के नाशक बने निज आत्म में तल्लीन हो।
गृसता न राहू का तिमिर जिस पर न मेघ घटा अड़े,
छुप जायँ रवि, शशि मेघ से प्रतिबिम्ब पर राहू पड़े।

(३६)

प्रभु के सुमुख के सामने तुलना न शशि की कर सकूं,
मंदी पड़ी शशि की प्रभा घन राहु ने घेरी तकूं।
मुख चन्द्र प्रभु का देखते हम शांन्ति मुद्रा के सहित,
अनुपम प्रकाश धरें प्रभू पाते न शशि उपमा ललित।

(३७)

अज्ञान तम हरते प्रभू फैला प्रकास त्रिलोक में,
मैंने कहा है ही निरर्थक सूर्य शशि नरलोक में।
शशि सूर्य को समझूं विफल निशि में न चन्द्र जरूर था,
चाहूं न दिन में सूर्य को प्रभु की प्रभा से पूर था।

(३८)

प्रभु का प्रकाश पड़े निकट मार्तण्डभू से दूर था,
निष्फल हुए शशि रात में अन्धेर ही भरपूर था।
गल्ला पका कृषि भूमि में गर्जे सघन वर्षे प्रखर,*
कहने लगे धिक धिक चतुर वर्षे न ऊसर भूमि पर।

---

* ओले

(३९)

है स्वपर द्योतक ज्ञान प्रभु में द्योत उसका छा रहा,
पाया न हरि हर आदिकों ने ज्ञान वह अणुभर कहा।
पाते न सम्यक् ज्ञान वे परिचय प्रतक्ष करा रहा,
भवभोग में देखे फँसे उनका न यश में गा रहा।

(४०)

परखं सुपथ मैं मोक्ष का जिज्ञासु समदर्शी बना,
सम्यक्त रत्नत्रयधरूं हैं यह हमारी भावना।
गौरव धरूं मैं यत्न कर परखूं रतन की ज्योति को,
पाता न कांच अणू कभी उस रत्न के उद्योत को।

(४१)

मैंने लखे हरिहर अभी मैं श्रेष्ठ कहता हूं उन्हें,
सुस्मृति परीक्षा की हुई दर्शक बना देखूं उन्हें।
परखी, प्रदर्शक मैं बना पाये नहीं उनमें सुगुण,
स्वीकृत न करता हूं उन्हें ली आपकी मैंने शरण।

(४२)

श्रद्धान मेरा दृढ़ हुआ प्रभु को लखे प्रत्यक्ष में,
देखूं न उनको मैं कभी परखें कुचिन्ह समक्ष में।
विपरीत बाधक चिन्ह थे समदर्शिता है ही नहीं,
निश्चित हुवा उनसे अहो! भूलूँ न तुमको मैं कहीं।

(४३)

निर्माण शिशु का कर सकीं सौभाग्यनी देखीं त्रियाँ,
जग में जननि हैं सैकड़ों करतीं प्रसव बनतीं धियाँ।
गौरव न उनका गा सकूं सुत के समूह करें प्रसव,
प्रभु सम सपूत न जन सकीं पातीं न वे ऐसा विभव।

(४४)

जननी बनीं सद्धर्म कीं प्रभु का प्रसव उनने किया,
हैं एक माता आपकी उनने अपूर्व विजय किया।
सुन्दर दिशा विदिशा खिलीं वे कालिमा दर्शा रहीं,
करके प्रसव इक सूर्य का पूरव दिशा हर्षा रहीं।

(४५)

मुनि जन कहें ईश्वर तुम्हें पर्मेश कहते लोक में,
सम्यक्त तुम करते प्रगट हरते तिमिर त्रैलोक में।
विज्ञान के रवि हैं प्रभो! भ्रम तम विनाश किये सभी,
सेवक लखें गुण आपके वसु कर्म को जीतें तभी।

(४६)

मुनि जन ध्यान धरें सदा अनुभव मनन कीर्तन करें,
साधें अमर पथ आप में चारित्र को धारण करें।
मुनि जन समाधि मरण धरें सद्भक्ति प्रभु की कर तरें,
तज दें तुम्हें पावें न शिव जन्मन मरण के दुख धरें।

(४७)

कहते तुम्हें हैं साधु जन अनुपम अनन्त महन्त भी,
करते न अन्त अचिन्त प्रभु हैं संख आप असंखभी।
केवल ज्ञान किया प्रगट पाया सुपद अर्हन्त का,
हैं आप निर्मल विभु अहो! तन त्याग करते अन्त का।

(४८)

हैं सर्वदर्शी आप ही सर्वज्ञ जग जन ने कहा,
तुमने पतित पावन किये जग ने तुम्हें ईश्वर कहा।
हैं आप एक, अनेक भी तुम काम केतु जला चुके,
विज्ञान रीति प्रमाण कर तुम योग को बतला चुके।

(४९)

अर्चन गणेशों ने किया उनने सुबुद्ध कहा तुम्हें,
त्रैलोक को करते सुखी जग ने कहा शंकर तुम्हें।
रागादि अन्तर मल कहे उनके त्यागी आप हैं,
होते विमुख जो आप से सहते स्वयं सन्ताप हैं।

(५०)

त्रैकाल गुण पर्याय का वर्णन किया था आपने,
सूझा सुपथ था मोक्ष का जग जन लगे आलाप ने।
साहित्य के दर्शक प्रभो! जग ने कहा ब्रह्मा तुम्हें,
शब्दार्थ सम्बोधित पुरुष परमात्मा कहते तुम्हें।

(५१)

त्रैलोक के दुख को हरो तारो भवोदधि से जगत,
मन तन वचन से मैं नमूं तीर्थेश पद पाती प्रकृत।
निर्मल रतन भू के तलें त्यों विमल पद पाते प्रभू,
सेवक नमन करता तुम्हें लेता शरण कहता विभू।

(५२)

उद्धार करते विश्व का हैं तीर्थ प्रभु को मैं नमूं,
तुम स्वच्छ रत्न समान हो पाते विमल पद को नमूं।
पर्मेश परम पुरुष कहूं परमात्मा कह कर नमूं,
बड़वा अनल सम भव जलधि को शोष करते मैं नमूं।

(५३)

गुण के समूह मिले चले करते विचार प्रवास में,
प्रभु में स्वयं गुण हैं सघन करते समर्थन पास में।
ठहरे न दोष प्रवास करते बोलते अभिमान से, *
जग में अनेकाश्रित हमें है काम क्या भगवान से।

---

* प्रभु को न स्वप्ने में लखें भागे घमंड धरें कहें,
अचरज नहीं प्रभु को तजे तन में कनेवों के रहें।
स्वामी कुपथ गामी बनेंगे काम क्रोध महाबली,
प्रभु को तजें लूटें जगत ठहरे न दोष धरें गली।

(५४)

प्रभु के न तन में क्षेत्र हमको है मिला कहने लगे,
वृषभेष को तजकर चले हमने अनेकों को ठगे।
जग को सदूषित कर चुके दूषित न दोषों को कहें,
तन में रहेंगे हम उन्हीं के दोष भूषित पद लहें।

(५५)

थे कल्प तरु ऊँचे अधिक बैठे प्रभू उनके तलें,
तनकी खिली निर्मल प्रभा दर्शक लखें भ्रम तम दलें।
त्रैकाल अनुपम रूप को चारों दिशा में देखते,
दर्शक शरण लेते सभी समदर्शिता अनुप्रेक्षते।

(५६)

सुस्तुति करें दर्शक सभी प्रभु को त्रिजग दर्शी कहें,
हरते तिमिर तुम मोह का जग जन त्रिजग हर्षी कहें।
नभ में घुमड़ते मेघ जब किर्णें खिलें पल्टें विरङ्ग,
तमको हने रवि की किरण हरते प्रभु मिथ्या भिरङ्ग।

(५७)

चमके सिंहासन आपका उसमें जड़ीं अतिशय मणीं,
हीरा, जवाहर थे जड़े द्युति को धरें दमकीं कणीं।
ऐसे सिंहासन पर प्रभू हैं आप पद्मासन धरें,
दर्शक लखें भ्रम तम मिटे प्रभु हेम वर्ण प्रभा धरें।

(५८)

मन को हरण करने प्रभू प्रतिभा पड़ी दर्शी त्रिमल,
नभ में चँदोवा तन रहा सुन्दर वरण अतिशय धवल।
होता उदय मार्तंड का मन पर प्रकाश नहीं पड़ा,
किर्णें खिलीं प्रभु रूप कीं मनमें प्रकाश पड़ा वड़ा।

(५९)

फूले सुमन ज्यों कुन्द के है आपका तन हेम रङ्ग,
करमें चमर लेकर खड़े चहुं ओर से सुर इन्द्र सङ्ग।
जलके ढुले विन्दू पड़े तन पर कमल के ही अहो,
दीखे विमल मोती वरण तन पर प्रभू के जल वहो।

(६०)

सुम्मेरु गिर के शीस पर प्रभु आपका होता नहन,
उस पर अमर वर्षा रहे नभ कर रहा जल का वहन।
जलके झरें झिरना घनें लहरें चमकतीं सीं दिखीं,
नभ से तरङ्गें ले गिरीं शशि वर्ण के सम थीं दिखीं।

(६१)

शशि ने किया मन का हरण रवि का प्रताप समीप था,
पाता न उपमा शान्ति की रवि ताप जग के वीच था।
मोती सफेद प्रभा धरें मन का हरण करते सदा,
प्रभु की प्रभा से शान्ति पाते विश्व के प्राणी सदा।

(६२)

त्रैलोक के प्राणी तुम्हें हैं पूजते नमते सदा,
दर्शा रहे प्रभु सीस पर हैं तीन छत्र प्रगट सदा।
सुर नर उरग पति ने कहा प्रभु शीस पर शोभित मुकुट,
वे तीन छत्र जता रहे त्रैलोक के ईश्वर प्रगट।

(६३)

गंभीर स्वर से थीं बजीं ज्यों भेरियां जग ने सुनी,
दश ही दिशा कीर्तन करें शिव पथ प्रदर्शक थी धुनी।
त्रैलोक में आलाप था प्रभु मोक्ष पथ दर्शा रहे,
आये जगत जन सामने जिज्ञासु बन हर्षा रहे।

(६४)

आसन डिगे सुर के अहो! दुंदुभि बजी सुनने लगे,
विज्ञान से समझे सुपथ सुस्थान को तजने लगे।
कीर्तन किया यश गान का उपदेश सुनने को चले,
बोले अहो! सौभाग्य थे बाजे बजे अनहद भले।

(६५)

प्रेरित पवन बल मंद था अणु विन्दु वर्षे गंध के,
खिल ही चुके थे कल्प तरु दर्शक बने शिव पंथ के।
तरुवर अशोक फले जहां उपदेश हों वृषभेष के,
दुख का न नाम निशान था अतिशय अपूर्व जिनेश के।

(६६)

वर्षे सुमन के ऊर्ध्व मुख हों भूमि पर दीखें पड़े,
प्रभु के सुमुख से दिव्य ध्वनि खिरती सुने जग जन खड़े।
दर्शक बनें देखें सुमन वर्षें नभोदर से कड़े,
हर्षे सभी श्रोता अहो! प्रतिबिम्ब प्रभु ध्वनि के पड़े।

(६७)

है ही न द्युति त्रैलोक में निरखीं प्रभा मिलती नहीं,
पड़तीं प्रभायें मन्द सब सुर वृन्द ने परखीं यहीं।
नभ में खिलें रवि लालिमाँ अगनित अनन्त मिलें कहीं,
समसर प्रभु के रूप की मार्तण्ड कर सकते नहीं।

(६८)

पीछे प्रभा मंडल लगा भ्रम तम दलन वहकर रहा, *
जग जन लगे अलापने वह पूर्व जन्म बता रहा।
दर्पण समान लखें सभी वह सप्त भव दर्शा रहा,
शशि से मनोहर शाँति दे प्रभु का सुयश बतला रहा।

---

* प्रभु पीठ के पीछे लगा कहते प्रभा मंडल उसे,
वह दर्शकों के भ्रम हरे लखते जगत जन हैं उसे।
शंका न रहती है किसी को तीन काल बता रहा,
परिचय करें जग जन सभी वह दुक्ख उपशम कर रहा।

(६९)

दर्शक बने प्रभु मोक्ष के वर्णन करें सद्धर्म का,
मुनि के गृही के तत्त्व कहते नाश करते कर्म का।
शुभ कर्म का संग्रह करें वे स्वर्ग में उपजें सभी,
त्रैलोक में प्रभु हैं चतुर करते न कर्म ग्रहण कभी।

(७०)

परखें सुपथ जिज्ञासु जन करते प्रमाण परम धर्म,
प्रभु मेघ के सम गर्जते समझे जगत जन ने मरम।
नर पशु समझते अर्थ को थी विश्व भाषा आपकी,
साहित्य का करती प्रसव जग ने उसे सुस्थाप की।

(७१)

खिलती कमल सम है प्रभा हैं हेम वर्ण प्रभू विमल,
उछलें नखों की दीप्तियां पड़ते चरण फूलें कमल।
गुण गान सुर करने लगे प्रभु के पड़ें भू में चरण,
रचते कमल तत्काल हम लेते अमर प्रभु का शरण।

(७२)

अतिशय कमल फूले वहां करते विहार अभी प्रभू,
तद्रूप सुर रचते कमल प्रभु ने बना दी आर्य भू।
डग डग धरें खिलते कमल करते प्रयत्न अमर सभी,
प्रभु के चरण पड़ते अधर अचरज करें जग जन सभी।

(७३)

अतिशय अपूर्व विभूति युत रचते सुरेश समोसरण,
जग में कुदेव भरे घने पाते न वे अतिशय जघन।
खिरती प्रभू की दिव्य ध्वनि उपदेश से होता तरण,
सुनते जगत जन बोलते हम पूजते प्रभु के चरण।

(७४)

मार्तण्ड भू पर हो उदय निशितम लगे होने विलय,
पाते न तारागण प्रभा होता न रवि के सम उदय।
प्रभु के समान न हो विभव अणु मात्र भी अन्यत्र के,
करते न वे जग से तरण देखे विचार भविष्य के।

(७५)

मद से मलिन आतुर हुए उनके मतङ्ग झरें पिघल,
अलि गूंजते अति जोर से सुन शब्द गज पड़ते उछल।
किलकार करते दीर्घ स्वर होते उतङ्ग बने प्रबल,
भर कोप दौड़ें जोर से उद्धत मिलें गज गण सबल।

(७६)

उन्मत्त गज बन में मिलें मिल जाँय ऐरावत सदृश,
प्रभु के उपासक हों सबल गज को करें वश में अवश।
करते न अंकुश को ग्रहण निश्चित प्रभू की भक्ति से,
विचरें अभय बन में अहो! गज को करें वश शक्ति से।

(७७)

उन्मत्त गज के शीस को मृगपति नखों से लोंचते,
मोती झड़े बिखरे पड़े लखते पथिक मन मोड़ते।
सुन्दर धवल वन भूमि में बहता रुधिर गज शीस से,
डरते पथिक मृगपति न हो प्रार्थी बनें जगदीश से।

(७८)

भूले पथिक बन में फिरें निर्जन भयानक पंथ में,
फिरता मिला मृगपति उन्हें आया अचानक पंथ में।
आघात करने के लिये उसने छलांग भरी अहो,
थे बीच पंजों के बचे सेवक नहीं भयभीत हो।

(७९)

प्रचलित पवन बल से बढ़ी आगी लगी विकराल हो,
त्रैलोक में बुझती नहीं आया अचानक काल हो।
तिरके उड़ें नभ में अधिक भू पर भयंकर ताप हो,
करने लगे क्रन्दन मनुज बचते न वज्र प्रपात हो।

(८०)

ज्वाला मुखी क्या ? फट चुकी क्या पूर्ण भू जलती अभी,
देखा न अब तक दृश्य था कहने लगे जग जन सभी।
जो भस्म कर देती जगत प्रलयाग्नि उसको ही कही,
सेवक प्रभू के अल्प जल से शान्ति करते शीघ्र ही।

(८१)

पिक कण्ठ के सदृश वदन विकराल काले रङ्ग के,
फूंसे भयंकर स्वर भरें हों दृश्य उनमें जङ्ग के ।
क्रोधित सरप गण नेत्र करते लाल वर्ण भयावने,
ऊंचे करें फण क्रोध से पथ में पड़ें वे सामने ।

(८२)

बोलें पथिक पथ में रुके भय से हुए थे ही विकल,
पथ में पड़े अजगर प्रबल उनकी भयंकर है सकल ।
प्रभु के चरण सेवक चलें फण पर धरें पग सर्प के,
हो भक्ति दमिनी पास में चढ़ते नहीं विष सर्प के ।

(८३)

नृप गण लड़ें रण में अहो! उनके तुरंग चलें चपल,
घन सम करें गज गर्जना रणवीर रण वर्तें सबल ।
अतिशय दुखित भय साम्हने आ जाय रण का वेग से,
गुण गान प्रभु का जो करें दुख को हरें सम्वेग से ।

(८४)

दुर्जय समस्या सामने रण की पड़ी देखें निकट,
सेना नृपति की आ डटे ले शस्त्र शत्रु पर विकट ।
कीर्तन करें प्रभु का तभी सेना भगे तत्काल ही,
रवि किर्ण का होता उदय निशि तम भगे ज्यों प्रात ही ।

(८५)

बरछी चुभी गज शीस में भू रंग रही हो खून से,
गौरव धरें ज्यों वीर जन हटते नहीं रण भूमि से।
व्याकुल न होते शूर गण वे खून की सरिता तरें,
प्रभु के सगुण गानें लगे परिहार शत्रू का करें।

(८६)

पाने चले पदवीर का रणवीर हो रण में लड़े,
करते परास्त न शत्रु को अलाप करते हों खड़े।
सद्भक्ति प्रभु की कर चुके करते विजय रण में खड़े,
कहते अजीत उन्हें सभी प्रभु के भगत बनते बड़े।

(८७)

डूबे उदधि में हों मनुज भय से दुखित होते विकल,
उछलें मगर मच्छादि जहँ जलचर क्रोध करें चपल।
बड़वा अनल हो उदधि में वे अग्नि को उगलें प्रगट,
तरते उदधि भुजबल धरें प्रभु के भगत आते निकट।

(८८)

तीक्षण पवन तन में लगे था ही उदधि में जल अगम,
डग मग जहाजें हो रहीं लहरें लगें त्यों शस्त्र सम।
जल के सुपथ में कांपते नाविक जहाजों के डरे,
प्रभु के अटल सेवक मिले निर्भय जहाजें ले तरे।

(८९)

पीड़ित जलोदर रोग से कुबड़े हुए जिनके बदन,
आशा न जीने की करें रहते निराशित हो मरन।
भरते श्वासें मृत्यु की देते न जग के जन शरन,
सुस्मर्ण प्रभु के नाम का करके हुए आरोग्य जन।

(९०)

कफ, वात, पित्त, हुए कुपित तन में तपेदिक रोग हों,
बहु व्याधियां पीड़ित मनुज तनका धरें अतिशोक हों।
प्रभु चर्ण की रज शीस में सुस्पर्श रोगी जन करें,
हों काम देव समान तन वे शीघ्र रोगों को हरें।

(९१)

जकड़े जंजीरों से घिरे हों कैद में जन पड़ रहे,
कस्ती, सुभी, बेड़ीं, पड़ीं जंघा छिलीं दुख सह रहे।
नृप ने न्याय नहीं दिया था ही कहा संसार ने,
प्रभु नाम को जपने लगे स्वागत किया सरकार ने।

(९२)

निर्दोष जन को दंड दे नृप कैद में करदे उन्हें,
हों साम्यवादी राष्ट्र में कहते समालोचक इन्हें।
सत्कार पाते राष्ट्र में नृप नीति ने दूषित किया,
लेते प्रभू का वे शरण नृप ने न्याय उन्हें दिया।

(९३)

मृगपति, सरप, हाथी, मिलें आगी लगे क्रन्दन मचे,
करते विकल वड़वा अनल सुस्मर्ण प्रभु का कर वचे।
पीड़ित महोदर रोग से रण भूमि में जय पा चुके,
प्रभु नाम की माला जपें वर्ते अभय वतला चुके।

(९४)

विचरें अभय जग में अहो ! सेवक प्रभू के हों सवल,
उनके भगें भय आप से हों भक्ति से मन तन विमल।
सुस्तुति पढ़ें जो प्रेम से उनकी विपत्ति टले सभी,
गुण गान प्रभु का जो करें उनके टलें संकट सभी।

(९५)

माला प्रभू गुण की वनी हमने सुगुण संग्रह किये,
निज कंठ में धारण करूं मन ने सुगुण अपना लिये।
गूंथे सुमन सम वर्ण हैं शब्दार्थ के रंग में दिखे,
अतिशय प्रभू के गुण सगुण दीखे हमें हमने लिखे।

(९६)

सौभाग्य शाली जो सुजन धारण करेंगे कंठ में,
प्रभु नाम की माला जपें सुख प्राप्त करते अन्त में।
पाठक ! पढेंगे प्रेम से निज मन विमल कर लें सभी,
मुनि मान तुंग समान वे पाते विविध लक्ष्मी तभी।

वन्दना

(९७)

मुनिराज थे महराज थे सिरताज थे नरलोक के,
वृषभेश थे, सर्वेश थे जगदीश थे त्रैलोक थे।
मन, तन, बचन से मैं नमूं भगवान कहता हूं उन्हें,
थे विश्व के परमेश वे जग ने कहे ईश्वर उन्हें।

(९८)

जयवन्त हों ! जयवन्त हों ! मुनिमान तुंग मिलें कभी,
सविनय करूं स्वागत प्रगट मैं वन्दना कर लूं अभी।
जिनके हृदय से काव्य का यह श्रोत निकला था तभी,
जयवन्त हों ! जयवन्त हों ! मुनि मान तुंग मिलें कभी।

लेखक का प्रयत्न और पाठकों से भूल सुधार की याचना

(९९)

भावार्थ कुछ समझा लिखा पाठक न काव्य इसे गिनें,
भूलें रहीं होंगीं अधिक विद्वान शोधेंगे उन्हें।
दीपक तलें तम को धरें ऊपर प्रभा दर्शा रहा,
आदर्श प्रभुता है प्रभू की प्रगट कर हर्षा रहा।

(१००)

परखीं प्रभा प्रभु की अधिक गायी उसे इस गुप्त ने,
परखें विशारद जन कहेंगे किया यत्न अशक्त ने।
होगा विलुप्त यथार्थ मैं भावार्थ को समझा नहीं,
अनभिज्ञ गुप्त कृतज्ञ हो भूलें सुधरतीं सब कहीं।

(१०१)

मानव जगत में गुप्त जन हैं गूढ़ता को ही धरें,
अनभिज्ञ हूं मैं काव्य से सत् काव्य भिन्न प्रभा धरें।
परखी मिलेंगे जौहरी वे भूल तज परखें रतन,
उत्साह लेखक का बढ़े उत्कर्ष पावेगा यतन।

प्रेरणा और प्रसंग

(१)

शिशु तनुज मेरा बोलता मुझको खड़ी बोली रुचे,
वृषभेष की सुस्तुति लिखो बोली खड़ी जग को रुचे।
संकट मिटा दे शीघ्र वह प्रेरित करूं मैं हाल में,
लिखने लगो सद्भक्ति से हरगीत का की चाल में।

(२)

तत्काल ही लिखने लगा वृषभेश के गुण रत्न सम,
श्रम है सफल या है विफल पाठक करें निर्णय अक्रम।
शिशु गण पढ़ें जग जन सभी शिशु रामचन्द्र प्रेम से,
सीखें सदा सुस्तोत्र को परिचित रहें वृषभेष से।

राजा भोज और

भक्तामर स्तोत्र के प्रणेता

[महर्षि मानतुङ्ग पर अचानक आये हुए उपसर्ग का दृश्य]

(१)

आर्य भूमि में ख्याति प्राप्त कर बनी वैजयन्ती उज्जैन,
जग के भूपति अब भी कहते कवियों की नगरी उज्जैन।
बनी राजधानी भारत की बैठे गद्दी पर थे भोज,
नीति,काव्य,साहित्य शास्त्र की करते थे नृप प्रतिदिन खोज

(२)

सुपथ प्रदर्शक कवि वक्ता गण ? थे युग भोज भूप के नेत्र,
युग युग के साहित्य शास्त्र ने रोका आर्य भूमि का क्षेत्र।
पाया परामर्ष कवियों ने जाकर भोज भूप के पास,
उनकी अमर कीर्ति को भू पर दर्शाता निश दिन इतिहास।

(३)

काव्य, कोष, साहित्य शिल्प की शिक्षा पर था प्रेम विशेष,
पर्खी भोज भूप के सन्मुख नही प्रजा ने पाया क्लेश।
शाँति प्रसारक न्याय नीति से था प्रसिद्ध उनका व्योहार,
पंडित सुकवि सुरीति प्रचारक उनसे पाते थे सत्कार।

(४)

देश विदेशों के नृप उनको कहते थे साहित्य महेश,
गाते सुयश प्रशंसा करते बने विशारद भोज नरेश।
आर्य भूमि का ताज भोज नृप दिलवाता जग को उपदेश,
दुर्मन को पल्टाता क्षण में सुमन भेंट कर हरता क्लेश।

(५)

काव्य, कथा इतिहास वेद मत के पुराण पाठी आते,
उनको भूपति आदर देते थे धन कन दे अपनाते।
गद्य, पद्य गम्भीर अर्थ लिख सुपथ प्रदर्शक भाव भरे,
उत्तम लेख सुरोचक रचना को पर्खें नृप यश उचरे।

(६)

शब्द, अर्थ, भावार्थ तत्त्व की पर्खें पूरण कृति सज्जन,
चुन चुन कर आदर्श गूंथ देते थे नृप को अभिनन्दन।
मिले परस्पर काव्य प्रेमी बोले गद लाए हम हार,
भोज नृपति को भेंट करेंगे उनके नयनों का शृंगार।

(७)

नूतन काव्य रचे कर परिश्रम थीं उनमें उपमा आदर्श,
कर कमलों में भोज नृपति के रखदें हो जग का उत्कर्ष।
कोषाध्यक्ष प्रगट कर देता पर्खा जाता था साहित्य,
नृप को सुकवि बृहस्पति सम थे जो फैलाते थे सत्कृत्य।

(८)

पथ में चले प्रतीक्षा करते खुला भोज नृप का भंडार,
उच्चनाद से नगर कीर्तन करके दर्शाए सुविचार।
कविगण की प्रतिध्वनि को सुनकर जगने लगे नगर के लोग,
खिले कमल सम सुमुख दीखते था प्रभात का समय मनोग।

(९)

सज्जन जन ने करी प्रशंसा भोज भूप पथ परखें नित्य,
कवि जन से नृप प्रतिदिन मिलते समझें उन्हें धर्म का भृत्य।
सुकवि गणों की वाणी सुनकर पाते नृप मन में उत्साह,
दें संतोष सदा कवियों को क्यों न नृप के मन में चाह।

(१०)

संग्रह कर साहित्य सुमन की गूंथी माला कवि गण ने,
बोले भोज भूप की जग में सुनी प्रशंसा है हमने।
मणि सम चमके अर्थ काव्य में अलंकार की जड़ी कणीं,
स्वयं जोहरी भोज भूप हैं परखेंगे साहित्य मणीं।

(११)

तीनों कालों में शुभ पथ का दर्शक होगा वह साहित्य,
उपमा अलंकार से भूषित युक्ति युक्त कवि का साहित्य।
सुन्दर शब्दों में कवि गण ने लिख रक्खा ज्यों अर्थ सहित,
भोज भूप साहित्य दिवाकर पढ़कर कहते बना ललित।

(१२)

नूतन युग छा जावेगा ज्यों प्राकृतिक भू मंडल में,
यह साहित्य सुपथ का दर्शक गूंजेगा भू मंडल में।
कवि की कविता सातों स्वर भर वर्षेगी भू मंडल में,
पढ़ें गृही गृहणी गण ! जग में फैले ध्वनि नभ मंडल में।

(१३)

युग युग के नर करें प्रशंसा था वह भूप दूरदर्शी,
हो सुधार भावी सन्तति का पथे प्रजा सुपथ दर्शी।
कीर्तन कर कवि कविताएँ लिख ले साहित्य सुमन आते,
निर्भय हो कर लिखा सुभाषित भोज भूप को बतलाते।

(१४)

सुमन बने जग जन के जिससे कवि की कलमें दर्शातीं,
फैल न सकता पाप प्रजा में कवि की कविताएँ गातीं।
भोज भूप की सुस्मृतियों को भूल न सकता भारतवर्ष,
बतलाता साहित्य विश्व का था नृप वह भू पर आदर्श।

वर रुचि कवि और ब्रह्मदेवी का विवाह

(१)

वर रुचि कवि को दिया प्रमुख पद वे भूपति के मित्र बने,
उनके शिष्य अनेक सुकवि थे लगे परस्पर में कहने।
गुरु से कविता करना सीखे चलें समस्या हल करने,
गूंथे अतिशय काव्य मनोहर सुने सभी बस्ती भरने।

(२)

देर न करो गृही जन होते कहते उन्हें दूर दर्शी,
गुरुवर वर का मेल नहीं मिलवाते शिष्यों को दर्शी ।
हे ! गुरु देव सुता पर्णा दो रचो स्वयंवर परखो वर,
तरुण कन्या बनी सलज्जा रीति नीति से ढूंढ़ो वर ।

(३)

अपने मन में वर रुचि कविवर ने विचार करके रक्खा,
शास्त्र सु सम्मति देते जग को जग ने धर्म नहीं परखा ।
प्रत्युत्तर में काव्य सुनाया बोले समझा दूं तुमको,
कन्या वर को स्वयं ढूंढ़ती क्यों उलहना दो हम को ? ।

(४)

थी वर रुचि की सुता स्यानी नाम ब्रह्म देवी उसका,
उससे लगे पूछने वर रुचि पर्णो वर अपने मन का ।
कन्या स्वयं बता देती वर अधिक न करते जनक प्रयत्न,
स्वीकृत करती पत्नी पतिको शास्त्र सुसम्मति मेरा यत्न ।

(५)

बोले वर रुचि निज शिष्यों से एक सुता है मेरा रत्न,
करूं विचार स्वतंत्र चुने वर स्वयं सुता कर सकती यत्न ।
जीवन भर के हेल मेल में हो सौभाग्य कर्म अधीन,
परखेगी कन्या क्या वर को रचूं स्वयंवर था प्राचीन ।

(६)

प्रचलित प्रथा नहीं इस युग में बोली सुता सुनों पितु बात,
*स्वयं लोकमत बना विरोधी सुता न मांगे वर प्रख्यात।
पूर्व जन्म के कर्मोदय से कन्या पाती है सौभाग्य,
जनक जननि वर के निमित्त में लेते हैं अणु मात्र विभाग।

(७)

लज्जित होकर सुता न बोली समझ न सके तात यह बात,
समझे मन में लगे सोचने कुपित हुए बोले पश्चात।
कर्म वाद के स्वाभिमान में भूली तू करती है गर्व,
परखूंगा मैं वर को ढूंढूं मिले मूर्ख वर निरखूं सर्व।

(८)

ब्रँह्म देवि कन्या ने त्यों ही लेकर व्रत रक्खा था मौन,
कर्मवाद की थी विशारदा उसको समझा सकता कौन।
तर्क, छंद, व्याकरण, काव्य को पढ़ती थी कन्या निसदिन,
था अपूर्व साहस गुण उसमें किया न उसने चरित मलिन।

(९)

वर रुचि जैसे दुराग्रही पितु ने कह डाले व्यर्थ वचन,
चले सार्थक करने को वे ढूंढ़ रहे जग में दुर्जन।
निकल पड़े उज्जैन नगर से थे भेजे उनने सन्देश,
महा मूर्ख तन का कुरूप हो तरुण पुरुष हो तेज न लेश।

(१०)

बोले पथिक जनों से वर रुचि थी उनकी जग में पहिचान,
नगर, शहर, पुर, गढ़ ग्राम में मिले मूर्ख वर करूँ प्रवीन।
दुर्जन, मलिन कुरूप विप्र सुत को कर दूंगा कन्या दान,
कर्मवाद का निर्णय करना करूं न इससे क्षमा प्रदान।

(११)

शीघ्र चाहता हूँ मैं शिष्यो मूर्खों का हो मूर्ख महन्त,
स्वयं आंख से देखूंगा मैं परखूं मूर्ख दशा का अन्त।
पर्णी कथा सुना उसे यह कर्म वाद की होगी जांच,
सत्य कहूँ मैं हूँ सत् वक्ता सच को कभी न आती आँच।

(१२)

निर्जन वन में पहुंचे वररुचि देखन लगे विपिन का दृश्य,
मलयागिर चन्दन के तरुवर पर बैठा था एक मनुष्य।
देखा था शाखा पर बैठा हंसता था भर रहा अहूं,
पींड़ काटने लगा बोलने काटूं पेड़ समूल कहूँ।

(१३)

क्यों कर काटूं पींड़ पेड़ की भू पर गिरूं त्रास सहूँ,
समझे वर रुचि अपने मनमें ऐसा मूर्ख मिले न कहूँ।
तोभी वर रुचि उससे बोले क्यों रे क्यों तू भरे अहूं,
दिखता नहीं तुझे क्या मूरख तरुवर टूटे कहां रहूँ।

(१४)

दिया न उत्तर वर रुचि को ज्यों उनने पूछा उसका नाम,
बोले अद्भुत ज्ञान प्राप्त कर तुमने क्या पाया शुभ नाम।
मुख न बोलना चलो साथ में मैं बतला दूंगा शुभ नाम,
भोजन करो न करना श्रम कुछ करूं प्रसिद्ध तुम्हारा नाम।

(१५)

बोले वचन तोतले हैं हम पूजें चरण हमारे राम,
बामन के कुल में हम उपजे दुर्यश पड़ा हमारा नाम।
खेती बाड़ी करें न कुछ भी चौबे के कुल में उपजे,
पढ़ न सके संकल्प ब्याह में यजमानों ने हमें तजे।

(१६)

बोले वर रुचि अहो! भाग्य तुम तुमको देंगे विप्र अशीस,
भू मंडल में शोध लगाया बीते मास हमें छब्बीस।
मिले न तुम सम मूर्ख महाशय करूं तिलक कह दूंगा धन्य,
भू पर अतिशय मूर्ख मिले पर मिला न मूरख तुम सम अन्य।

(१७)

नख से शिख तक देखा तुमको दीखे दुर्जन आप अनन्य,
स्वयं मूर्खता लज्जित होती करे प्रशंसा कहती धन्य।
धन्य! आप का रूप श्याम रङ्ग तुमें कौन करता उत्पन्न,
जनक जननि हैं धन्य आपके तुमें देख हम हुए प्रसन्न।

(१८)

वर रुचि ने यों कहा विप्र से नहीं बोलना आप वचन,
उंगली से तुम सैन चलाना मैं कह दूंगा करे भजन।
समझूंगा मैं सैन तुम्हारी करूं अर्थ अतिशय गम्भीर,
कहूं जगत से महा तपी यह बने गृहस्थ साहसी धीर।

(१९)

इस प्रकार की बात परस्पर में वर रुचि ने दुर्यश से,
ले आए उज्जैन नगर में मिले कुटुम्बी खूब हँसे।
पहुंचे वर रुचि के घर में त्यों बोले पुरजन अहो तपीश,
होगा सुयश भाग्य में भारी तुम दे सकते हमें अशीस।

(२०)

ब्रँह्म देवि के सन्मुख वर को खड़ा कर दिया कहा सुनों,
उत्तम वर है योग्य आप के स्वीकृत कर लो तुम परणों।
बोली सुता जनक ने वर का जो समझा हो योग निमित्त,
स्वीकृत करती पितु की बाणी में अर्पण कर दूंगी वित्त।

(२१)

शुभ महूर्त में वर रुचि ने यों परणाने का किया विचार,
ब्रँह्म देवि का दुर्यश वर के साथ विवाह किया व्यवहार।
पढ़ी लिखी लड़की के मर्दन से बांधा यों मूरख वर,
दूजे तीजे दिन में वर रुचि थे कांपे अतिशय थर थर।

(२२)

पश्चाताप किया उसने हा ! हा ! हा ! हाय ! क्रोध बुरा,
उसने यह अकर्म करवाया मेरे चित को लिया चुरा ।
प्रायश्चित्त न होगा इसका जमें पाप तरु के अंकूर,
वर रुचि का पांडित्य धूल में मिला कहेंगे नृप भरपूर ।

(२३)

प्रतिदिन मुझ को जाना पड़ता राज सभा में अहो ! पुनीत,
भोज भूप सुन पावेंगे हा ! दें उलहना करी कुनीत ।
क्या मुख नृप को दिखा सकूंगा मांगू क्षमा करें न प्रदान,
देंगे दंड कहेंगे मुझ से अरे ! नीच रखता अभिमान ।

(२४)

करें विनोद परस्पर में चर्चा फैलेगी वाटों वाट,
मीठी कडुवी हँसी करेंगे करें ठठोली भडुए भाट ।
छुपी नीति से करें प्रदर्शन दो वर रुचि को दंड महान,
विना धार की छुरी रेशमी से वर रुचि के काटो कान ।

(२५)

भोज भूप विद्या का प्रेमी वर रुचि को देता सन्मान,
मुझें जमाई उसका होगा अद्भुत पूर्ण महा विद्वान ।
प्रेरित करें मुझे मिलना है चतुर जमाई से ही आज,
मेरा मूर्ख जमाई हो क्या ! प्रगट करूँ आवेगी लाज ।

(२६)

इससे दूंगा उसको शिक्षा सीख सकेगा कुछ २ बोध,
दुर्यश से बोले वर रुचि त्यों नित्य पढ़ो तुम शीघ्र सुबोध।
भोज नृपति के सभा भवन में जाना पड़ता हमें हमेश,
हूं प्रसिद्ध मैं आर्य भूमि में मुझ से परिचित सर्व नरेश।

दुर्यश को शिक्षा

(२७)

स्वर व्यंजन का दिया पाठ था दुर्यश को शिक्षित करने,
आप अकेले पढ़ने बैठे अ ! आ ! इ ! ई ! उच्चरने।
बीते मास अनेक चूंकि दुर्यश को आया एक न शब्द ?
हुए निराश सगुरु भी बोले अरे ! मूर्ख बीतेगा अब्द। *

(२८)

लेकर पट्टी लगे लिखाने क, का, कि, की, कु, कू, शब्द,
बोले मूर्ख पढ़ा न अभी तक बीते मास हुवा इक अब्द।
फलते नहीं बेत के तरुवर चाहे अमृत से सींचो !
बोले वर रुचि सफल न होंगे पढ़े न मूर्ख कान खींचो।

(२९)

ऐंठे कान उन्होंने कर से करते पश्चाताप अनेक,
मन ही मन में कुढ़ते थे वे देखा जग में मूरख एक।
धर सन्तोष पाठ के बदले उन्हें सिखाने लगे अशीस,
बोले "स्वस्त्यस्तु" को घोंटो करो कंठ दांतों से पीस।

---

* संवत्

(३०)

भोज भूप के सभा भवन में उच्चारण करना इसको,
नृप के सन्मुख "स्वस्त्यस्तु" को कहना हम जाते घरको।
चुपकी लेकर सेन चलाना मैं कह दूंगा करे भजन,
अतिशय त्यागी बड़ा विशारद नहीं बोलता व्यर्थ वचन।

(३१)

बोले वर रुचि चतुर जमाई एक बात रखना मन में,
मेरे मित्र मिलेंगे मुझ से पूछें तुम्हें उसी क्षण में।
तुम अपनी जंगल की बोली नहीं बोलना हे ! महमान,
राम ! राम ! हे राम ! कृष्ण का करना भजन सुने विद्वान।

(३२)

पालिस की जाती लकड़ी पर चढ़े कलई वर्तन पर भी,
बजे न पोल ढोल की खाली मढ़े चाम वे बजे तभी।
इसी तरह तुम गौरव रखना चले नहीं जग में धिक्कार,
समझा देंगे कीर्ति आपकी भूल न करना कभी लगार।

(३३)

द्वादश मास करी सिर पच्ची तो भी दुर्यश नहीं पढ़े,
पट्टी रक्खी सैकड़ों लिखकर बजे न ढोलक विना मढ़े।
वर रुचि ने आश्चर्य प्रगट कर कहा परस्पर मिलें विरंच,
सिखलाने को भी बैठेंगे सीख न सकता मूरख रंच।

(३४)

अवसर पाकर भोज भूप ने की वर रुचि से बात नई,
बैठे सभा बीच में कविगण ! करते अर्थ विनोद कई।
सुन्दर सुकवि जमाई जग में वर रुचि का देखा हम ने,
अश्रुत पूर्व विद्वता उसकी हमें न बतलाई तुमने।

(३५)

कल की सभा भरेगी जल्दी तुमें जताता हूं सादर,
अपने चतुर जमाई लेकर आना उन्हें मिले आदर।
नहीं भूलना वर रुचि इसको पाते कवि उपहार अनेक,
मिले पारितोषक उनको जब सभी कहें जग में कवि एक,

(३६)

वररुचि ने नृप से विनती की हे ! भूपति वह बड़ा सुजान,
देखेंगे उसको प्रतक्ष में परिचय पावेंगे विद्वान।
पढ़ा वेद की वाणी अनुपम महा तपी रखता है मौन,
व्यर्थ विवाद न करता क्षण क्षण अर्थ अखंड समझता कौन।

(३७)

वर रुचि ने दुर्यश को निशि में पाठ पढ़ाया था भरपूर,
"स्वस्त्यस्तु" को शुद्ध बोलना नृप से बैठे रहना दूर।
दूजे दिन की सभा जीतने ससुर जमाई चले अहो,
क्षणिक देर में भोज भूप के पहुंचे पास जुहारु कहो।

(३८)

निमिष मात्र की अवधि बिताकर दुर्यश आये नृप के पास,
उशरट! उशरट! उशरट! बोले! नाक सिकोड़ी हुए उदास
बैठे वहां अनेक सुकवि थे लगे पूंछने करें विनोद,
है अनर्थ की पोषक वाणी चतुर जमाई वर्ते मोद।

(३९)

जो भाषा युग युग में पल्टी उसके लगे देखने कोष,
मिला न उशरट! का शब्दाशय पा न सके कविगण? सन्तोष
ढूंढ़े कोष न शब्द मिले जब दी वर रुचि ने उन्हें सलाह,
मिला न कोष वेद वाणी का वेद पढ़ो तुम धर उत्साह।

(४०)

कवि गण! ने प्रतिवाद किया ज्यों उशरट? का समझादो अर्थ,
क्यों कर कहो वेद की वाणी क्यों करते हैं आप अनर्थ।
अतिशय क्षोभ! सभा में फैला पोथी पत्रे देखे ढेर,
मिला न अर्थ, अनर्थ सिद्ध था बोले वर रुचि हुई अबेर।

(४१)

मेरा सुकवि जमाई रचना करता सूत्रों की अनुपम,
उसके रचे काव्य पर पानी फेर न सकते वेदोत्तम।
स्वयं नृपति विद्वान सोच लेंगे टुक भर में आशय को,
धन्यवाद दें सभी सभासद परिचित हुए महाशय को।

(४२)

वेद भाष्य में देखा हमने उशरट ! का बतलादूं अर्थ,
उः मे उमा पार्वती गर्भित श; से शंकर बने समर्थ।
र, से, रक्षा करें जगत की ट, से फैलचु की टङ्कार,
शंकर पार्वती के सेवक दें अशीस उपमा लङ्कार।

(४३)

वर रुचि से उत्तर पा नृप ने दिया उन्हें अतिशय उपहार,
करी प्रशंसा आप चतुर जब क्यों न चतुर हो नातेदार।
अहो ! धुरन्धर वेद सुवक्ता महातपी मौनी उत्तम,
क्या ही खूब पढ़ विद्या तुम दीखे विप्रों में अनुपम।

(४४)

नीति सुभाषित विद्वानों की सभा विसर्जन हुई अहो,
पथ में वचन कहे वर रुचि ने दुर्यश से क्यों दुष्ट कहो।
अरे मूर्ख तूं "स्वस्त्यस्तु,, को भूला हा ! हाय ! अहो !
मैं जो इतनी वुद्धि न पाता तूं मूरख था सिद्ध अहो।

(४५)

वर रुचि ने क्रोधित होकर के दुर्यश का अपमान किया,
लातें मारीं घूंसे मुक्के देकर पथ में रुला दिया।
कहा वेशरम विप्र पूत हो करके क्यों तू मूर्ख रहा,
मुख न दिखाता सभा बीच में तेरे पीछे झूठ कहा।

(४६)

सगे ससुर के द्वारा दुर्यश पर यों दुर्व्यवहार हुवा,
दौड़ा दुर्यश भगा वहां से अतिशय उसको दुक्ख हुवा।
वना एक मठ वीच विपिन में थी मूरत उसमें काली,
पहुंचा दुर्यश रोकर वोला तू विद्या देने वाली।

॥ कालिका देवी और दुर्यश ॥

(४७)

मूर्ति कालिका के चरणों पर दुर्यश गिरा विनीत वना,
हे ? देवी विद्या दे मुझको धरूं निकट तेरे धरना।
असन, अन्न, जल पान त्याग कर दुर्यश ने रक्खा धरना,
नहीं प्राण तूं हर ले देवी लेता हूँ तेरा शरणा।

(४८)

इस प्रकार दुर्यश ने धरना रक्खा निकट कालिका के,
वीते सात दिवस यों ही थे खड़े पास थे प्रतिमा के।
अष्टम दिन के उदय काल में दिये कालिका ने दर्शन,
वोली तुमें चाहिये वैभव इसीलिये करते क्रन्दन। *

---

* जीतें साधु महर्षि मंत्र से करें कालिका को निर्वल,
क्षण में चक्रेश्वरी भवानी दे प्रभु का दर्शन निर्मल।
वेताली विद्या काली है चाहे जाती जहां मचल,
पाते विजय कालिका पर वे पढ़ें प्रभु के मंत्र अचल।

(४९)

राज पाठ दूं कोष खजाना मिलें भूमि में रत्न तुमें,
स्वीकृत करलो वचन आज तुम पड़े विपति भूलो न हमें।
संकट सर्व हरण कर लूंगी करना आप मुझे सुस्मर्ण,
कविता करूं सीस पर वैठूं दूं सहायता करे न मर्ण।

(५०)

दुर्यश ने यों किया निवेदन हे ! देवी चाहूँ विद्या,
दूजी बात न चाहूं कुछ भी कवि की मिले पूर्ण विद्या।
काव्य कहूं कविता लिख दूं मैं सिद्ध करूं कवि की विद्या,
सुना कालिका वर देती है देती वेताली विद्या।

(५१)

सिद्ध हो चुकी विद्या तुमको हो अदृश्य वोली काली,
कालिदास दूं नाम आपका मैं कविता करने वाली।
वाणी तेरे मुख से निकले मैं काली गाने वाली,
नभ से स्वर भर तेरे मुख में भर दूं विद्या वेताली।

(५२)

एक दिवस सम्पूर्ण देवियों का था नभ में सम्मेलन,
उनके सुविचारों का पाठक ! करता हूं कुछ, कुछ वर्णन।
पद्मासिनि देवी ने अपने मनोभाव ज्यों प्रगट किये,
कुकवि कुकाव्य न भू पर लिक्खें सम्मेलन ने पास किये।

(५३)

कुकवि गणों की नहीं सहायक हों देवी भेजे सन्देश,
प्रचलित जग में बना लोकमत कुकवि न दे सकते उपदेश।
जो सुकाव्य को लिखें परस्पर में फैलाते सदय सुबोध,
उन्हें सरस्वति दें सहायता दें देवी कवि को सम्बोध।

(५४)

स्वयं सरस्वति पद्मासिनि से बोलीं काव्य करो अनुकूल,
सुनकर ऋषि, मुनि वन में हर्षें हो पापों की जड़ निर्मूल।
सभा चतुर चक्रेश्वरि देवी ने थे नियम दिये अनुकूल,
वृषभनाथ परमेश्वर के अर्चन करने में पड़े न भूल।

(५५)

विनय सहित थे किये स्वीकृत नियम देवियों ने निर्भूल,
तत्त्व प्रणेता के चरणों पर अर्चन करके रक्खें फूल।
मन तन वचनों से गुण गाकर सीस झुकाकर करें नमन,
धर्मी की रक्षा करतीं वे करतीं उनसे धर्म श्रवण।

(५६)

कालिदास जी सदा प्रभू की सुस्तुति तुम मुख से उचरो,
योगी, तपी महर्षि जनों के गुण गाने को काव्य करो।
उनके अमित तेज के सन्मुख निर्मद होकर रचना काव्य
दुराग्रही होते जो कविगण ? कभी न लिख सकते सत् काव्य।

(५७)

कालिदास ने श्रद्धा पूर्वक कहा कालिका का माना, ‡
पथ रक्खा उज्जैन पुरी का आया उन्हें खूब गाना ।
निकले सार्थक शब्द सुमुख से ज्यों वर्षा में लगे झड़ी,
श्रोत वद्ध हुई ललित सुभाषा भाव प्रदर्शक मिली कड़ी ।

(५८)

जग जन मिलने लगे परस्पर सुनें काव्य नवरस भरपूर,
अचरज करते थे वर रुचि ने पूंछी क्षेम कुशल हो दूर ।
मन ही मन में हंसकर बोले फला ब्रह्म देवी का भाग,
कर्म रेख पर मेख जनक ने ठोकी अतिशय फले सुहाग ।

(५९)

विनय भाव से बोले वर रुचि अहो ! जमाई मेरे तुम,
इतनी जल्दी विद्या पाकर बने बृहस्पति जग के तुम ।
कहां पढ़े तुम कौन तुम्हारा ? गुरू बृहस्पति मिले तुमें,
दिया शारदा ने है वर क्या ? अचरज होता बड़ा हमें ।

---

‡ काली देवी नभ में विचरे भू पर मरी बनी फिरती,
दे सन्देश शीघ्र मृत्यू का कविगण ! से परिचय करती ।
वाय वलाय रूप रख करके धोका दे डांकनि बनती,
निडर रहें कवि गण ! काली से काली खड़ी खड़ी नचती ।

(६०)

पाया है विश्वास भाग्य पर ब्रह्म देवि ने इस जग में,
अनायाश बर मिले हमें तुम परिचय देंगे हम जग में।
न्याय काक ताली से परिचित होते सफल इसी जग में,
सर्व गुणों से भूषित अनुपम है साहित्य आर्य जग में।

(६१)

बोले दुर्यश सुनों ससुर जी हमने पाया है बरदान,
पल्टा नाम कालिका देवी ने मेरा देकर सन्मान।
प्रगट कालिका बोलीं मुझ से मेरी विद्या वेताली,
हूँ व्यतरनी नाम किन्नरी जग कहता मुझको काली।

(६२)

कविवर का पद दे काली ने हमें भेंट दी काव्य कला,
नीति सुभाषित विविध छंद में रचूं काव्यमैं करूं भला।
साम्प्रति जग में प्रश्न उपस्थित उन्हें करूं हल रखता ध्येय,
गृही धर्म की नीति लिखूंगा पढ़ें जगत जन बनें अजेय।

---

‡ तन से मोह न रखते योगी उन्हें कालिका देख डरे,
वृषभनाथ भगवन् के सन्मुख करे प्रार्थना हरे! हरे!
आती कवि के पास कालिका रक्षक चक्रेश्वरी खड़ी,
चन्द्र कान्ति सम सिंहासनपर दीखी मूरत प्रभा पड़ी।

(६३)

प्रथम कृतज्ञ ससुर जी का हूँ दिया उन्हों ने अतिशय दंड,
उनकी शिक्षा से वर पाया करूँ काव्य मैं तजूं घमंड।
मिले हमें साहित्य पूर्व का उसको नूतन कर दूंगा,
हो प्रसिद्ध गार्हस्थ धर्म में मिले लोक मत लिख दूंगा।

(६४)

नूतन कृति कर नृप के सन्मुख रखूँ न लोभ न लूं उपहार,
जो होगा मेरा स्वतंत्र मत उसे गूंथ दूं पा आधार।
साम्प्रत युग में चर्चा फैले बने गृहस्थों का आदर्श,
सुपथ प्रदर्शक भाव भरूंगा पूर्ण जगत में फैले हर्ष।

(६५)

पतिव्रत पत्नीव्रत की चर्चा फैले जग में चारों ओर,
भ्रातृभाव से पूरित जीवन चरित लिखूं तुक दूंगाजोर।
पैतृक सम्पति तजें वीर सुत ब्रह्मचर्य व्रत सदा धरें,
सफल करें उद्देश्य पूर्ण वे भय भंजन करते विचरें।

---

‡ अनुपम हो आनंद सुकवि को प्रभु की सुस्तुति गान करे,
देखूँ दृश्य अहिर्निशि चिन्ता वढ़े आत्म गौरव उचरे।
पाठक भूल ? न आना जग में दीखें देवी तन न तजे,
करे सुकर्म तजे तन अब तक ले प्रभु नाम न अन्य भजे।

भोज भूप की सभा में कालीदास का प्रवेश

(६६)

वर रुचि ने अपने जमाई की परखी चतुरई हुए प्रसन्न ,
बोले भोज भूप से इकदिन कालीदास हुवा व्युत्पन्न ।
बना सुकवि वेदों का वक्ता लिखता गद्य. पद्य दिनरैन,
साधु सन्त सम महत्पुरुष वह उसको ले आऊं उज्जैन।

(६७)

बोले भोज भूप मंत्रीगण ! मेरी सम्मति को सुन लो,
उत्तम कवियों के समूह में से कवि वाग्मीक चुन लो ।
देखो तुम साहित्य सभा में परखो साहित्यी के गुण,
कितने पंडित गण सद् वक्ता हैं उपदेशक नीति निपुण ।

(६८)

कालिदास ने वर पाया है सुना कालिका देवी से,
काव्य कला की शिक्षा लेने को वह मिला किन्नरी से ।
सुनी प्रशंसा थी हमने भी हैं प्रसन्न उनसे काली,
जीत न सकते वाग्मीक गण ! बोले विद्या वेताली ।

---

‡ सिंहासन पर चन्द्र कान्ति सम हमें हृदय प्रत्यक्ष दिखा,
था प्रभात का समय मनोहर देखा मैंने उसे लिखा ।
कर न सकूँ मैं मुख से वर्णन देव देवियाँ नचते थे,
मानो पहुँचे समोसरण में हम भक्तामर पढ़ते थे ।

(६९)

कालिदास को शीघ्र बुलाना दी आज्ञा वर रुचि तुमको,
सूची करो सर्व सम्मति से पत्र लिखोगे कब उनको।
भोज भूप वर रुचि शास्त्री की हुई परस्पर पूरण बात,
निश्चित किया करूँगा सूची करूँ सुपरिचित बड़े प्रभात।

(७०)

आवें सब उज्जैन नगर में आमंत्रण करता है क्षत्र,
होगा सम्मेलन कवियों का भेजूं सर्व प्रजा को पत्र।
दुखी प्रजा बतलादे निर्भय सुलभ सुशासन हो उत्कृष्ट,
पड़े न सुख साधनमें अन्तर कहो शीघ्र उसदिन सुस्पष्ट।

(७१)

पूर्ण राजधानी के आवें धनी विद्वजन सन्त महन्त,
खबर करूँ पत्री लिख भेजूं फूलेगी साहित्य वसन्त।
निकट समय की अवधि रखूंगा सभी वस्तु को रखूं नवेर,
सादर न्योता भोज भूप का प्रगट करूँगा करूँ न देर।

(७२)

खबर भेज दूं अन्य नृपों को भेजूं सेवक देंगे टेर,
लिखूँ समस्या हल करने को आवें पुरजन पड़े न फेर।
सर्व सुसम्मति से प्रमाण कर प्रजा स्वतन्त्र चुनेगी नीति,
सो बच्छे सब प्रेम बढ़ेगा जग जन में बर्तेगी प्रीति।

(७३)

नृप ने पुनर्वार दी आज्ञा अहो ! शास्त्री प्रगट करो,
विद्वानों को भेट मिलेगी लिखो पत्र मुख से उचरो।
मंत्री कोषाध्यक्ष सर्व को शीघ्र सुना दो पूरण बात,
दान मान में हों उत्साहित भोज भूप का यश विख्यात।

(७४)

मणि से जड़े आभरण रख लो हीरा मोती धरो नवेर,
अंगा, धोती, पाग, दुपट्टा, सिरोपाव लो नए नवेर।
भोजन, व्यंजन, षटरस पूरित शुद्ध बने पूरण मिष्टान्न,
पाक शास्त्र परिचित विशारदा से कह दो आते महमान।

(७५)

फूलों की मालाएं माली ले आवेंगे गंध भरीं,
गादी के दोनों बाजू पर रखें नचें उन पर भ्रमरीं।
गुल दस्ताएं दर्वाजों पर रक्खें नारीं साज सजें,
बजं मृदंग सतार, मजीरे परखें स्वर कविगण गजें।

(७६)

आज्ञा पालक बर रुचि द्विज ने इस प्रकार भेजे सन्देश,
हो सजीव साहित्य प्रदर्शन देंगे बृहस्पती उपदेश।
हर्षित हुई प्रजा सम्पूरण करने लगे चतुर मस्थान,
था उत्साह उन्हों को कवि के सुनें काव्य काटें अज्ञान।

(७७)

कालिदास कविवर ज्यों आए किया सज्जनों ने सन्मान,
भोज भूप ने हाथ मिलाया भेटे रत्न भोज जलपान।
प्रजा राज्य के नीति शास्त्र में सदय वेद के भाव भरे,
चूंकि विवश हो मत स्वतन्त्र बतलाये लिखकर ग्रंथ धरे।

(७८)

युग, युग की साहित्य परीक्षा पर होते थे सदा विवाद,
सुपथ प्रदर्शक नीति पूर्व की दर्शाते करते प्रतिवाद।
अहो ! बड़ा आभार जगत का रखा प्रकृति ने है कविपर,
ब्रँह्मा, विष्णु, महेशों की भू को भी पल्टे प्रति ध्वनि भर।

(७९)

क्षण में हँस दें क्षण में रोदें कर से लेख लिखें गजें,
हँसते आप हंसादें जग को रोते आप रुला बजें।
कवि ले जाते स्वर्ग पुरी में गाते विविध भांति तजें,
तारण, तरण मोक्ष दर्शाते खड़े मोक्ष पथ में गर्जें।

(८०)

बनें कुकवि करते अनर्थ को रचें कुकाव्य बनादें क्रूर,
कलह करा दें, दन्ड दिलादें, हंसी करादें रहते दूर।
नर नारी के तन पर सीझें अतिशय तन का नाश करें,
जीता जगत नर्क में पटकें अमृत में विष घोल मरें।

(८१)

गूंथे कुकवि कुकाव्य बुरे जिनको पढ़कर नर बनते नीच,
अंधों की आखों में झोकें मानों धूल नगर के बीच।
काम रूप कामाग्नि जलाते रखें न नृप गण उन्हें नगीच,
ऐसी कुकवि श्रेणी को जग के जन कहते हैं नर नींच।

(८२)

क्षण, क्षण में घन के सम गर्जे वर्षाए थे काव्य अपूर्व,
साम्प्रति, सतयुग, कलियुग का श्रुत सुना सुकवियों ने था खूब
हर्षित हुए सभासद बोले नहीं तुम्हारे सम कवि अन्य,
महातपी तुम अतिशय त्यागी कहती सभा भोजकी धन्य।

(८३)

किया विचार भोज भूपति ने क्या कविवर लेंगे उपहार,
मनोभाव कुछ किये प्रदर्शित लो हीरों का तुम भंडार।
नहीं लोभ रखते कवि वक्ता प्रगट किये उनने सम भाव,
हों आदर्श गृहस्थ उन्हीं को लिखकर भेटूंगा सद्भाव।

(८४)

पा प्रसङ्ग इक दिवस भोज ने थे विचार वे प्रगट किये,
हे! कविराज कालिका देवी ने थे दर्शन तुम्हें दिये।
करूं प्रतीक्षा दीर्घकाल से कहूँ आज अवसर पाकर,
काली देवी कविता करती क्या दर्शन देती आकर?

(८५)

नगरी के कवि अर्चन करते बना लोकमत है भर पूर,
वेद विशारद ऋषि मुनि जिन के पूजें पद पङ्कज रणशूर।
देते उन्हें प्रमुख पद योगी वन में रहते हैं मुनिवर,
देव देवियां सन्मुख नचतीं नमते उनको विद्याधर।

(८६)

तर्क, छन्द, व्याकरण पढ़ाते वन में मानतुंग मुनिवर,
विद्या के भंडार जगत जन कहते उनको पर्मेश्वर।
बावन देवीं सन्मुख नचतीं मुनि के पूजें चरण कमल,
मोक्ष मार्ग के जिज्ञासू जन मन तन वचन करें निर्मल।

(८७)

जग जन कहते मानतुङ्ग मुनि को हम कहते पद्माकर,
अर्चे जाते वीव सभा में मानतुङ्ग मुनि पद्माकर।
आशा मेरी रहे अहिर्निशि मिलते कविवर पद्माकर,
कालिदास कवि यत्न करें कुछ शीघ्र मिलादें पद्माकर।

(८८)

बोले कालिदास हे ! भूपति मैं देवी से पूछूंगा,
क्षण में उत्तर दूंगा तुमको मुनिवर को बुलवा लूंगा।
भोज भूप के सभा भवन में बैठे मानतुङ्ग आकर,
प्रश्न भूप का हम हल कर दें हर्षे नृप दर्शन पाकर।

(८९)

कालिदास ने ध्यान लगाया कांपा आसन काली का, +
समझीं कविवर ने बुलवाया रखूं रूप रण चन्डी का।
शीघ्र चलीं पग के आभूषण बजें न दीखें रक्खे चर्ण,
कृष्ण वर्ण मुख बना भयङ्कर मानो प्रसव कर रही मर्ण।

(९०)

परिचय पाया कालिदास ने बनी कालिका रण चंडी,
मांस चढ़ाकर दुर्जन पूजें कहा उन्हों से पाखण्डी।
राजपूत घर की महिलाएं निरखें मेरा प्रतिदिन रूप,
करने चलीं दमन पापीका रण में लड़तीं धरें कुरूप।

(९१)

जग जन से हिंसा न कराती नहीं चाहती हिंसक दान,
मूर्ख मनुज आमिष के भक्षी व्यर्थ पशू के हरते प्रान!
अहो! अहो! भूली वनिताएं करें कालिका का अपमान,
प्रकृति प्रकोप करेगी भू पर देगी काली दंड महान।

+ कालिदास ने की प्रार्थना अहो! कालिका तेरा तन,
अति विकराल कुरूप भयङ्कर देख न सकते जग के जन।
नर नारी डरते हैं तुझ से देखें सूरत करें मरण,
नृप को सुन्दर तन रख कर तूँ देना दर्शन लिया शरण।

(९८)

सेठ सुदत्त हँसे मन में बोले भूपति हैं आप चतुर,
पढ़े नाम माला यह बालक सुनों शिशू के वचन मधुर।
अचरज करने लगे भोज नृप को दीखा था शिशु जिज्ञासु,
कोष, काव्य के ग्रन्थ पढ़ेगा होनहार बालक जिज्ञासु।

(९९)

भोज नृपति ने कहा सेठ से मैंने सुनी नाम माला,
अश्रुत पूर्व ग्रन्थ पढ़ाते अनुपम कोष गूंथ डाला।
कौन सुकवि की यह उत्तम कृति जो न आज तक दिखी कहीं,
उसकी प्रति को शीघ्र चाहता हूँ मैं देखूं मिले यहीं।

(१००)

सेठ सुदत्त नृपति से बोले कोष नाम माला लिक्खा,
नाम धनंजय कविवर उनका नृप ने उन्हें नहीं परखा।
बोले भूपति अहो ! सेठ जी उन्हें मिलाना कल हम से,
क्यों न आज तक उनका परिचय दिया न हम मिलते उनसे।

+ बोले भोज भूप मेरी इच्छा यह प्रतिदिन रहती,
सभा बीच में मानतुङ्ग मुनि काव्य रचें देवी नचती।
मानतुङ्ग मुनि पद्माकर के बिना सभा सूनी रहती,
बैठ सदा सभा में मुनिवर काव्य रचें प्रतिभा बढ़ती।

(१०१)

नृप के घर से चले सेठ जी आये पास धनंजय के,
बोले विनय सहित वे उनसे दूजे दिवस चलें नृप के।
स्वयं भोज नृप ने हम से है प्रकट किया भेजा सन्देश,
ले आना कल दिन में उनको राज सभा में दें उपदेश।

(कविवर धनंजय की भोज भूप से भेंट)

(१०२)

बोले कविवर अहो ! सेठ जी मिलें भोज नृपसे कल हम,
चलूं आप के साथ मिलूंगा देना परिचय मेरा तुम।
चले सेठ के साथ धनंजय कविवर मिलने भूपति से,
पहुंचे भोज नृपति के सन्मुख दी अशीस ऊंची सबसे।

(१०३)

अमर रहो हे ! भोज भूप!तुम हो महराज प्रजा के प्राण,
चेतन के विज्ञान जगे ज्यों करते तुम जग का उत्थान।
अमर सुपथ का दर्शक जग में है साहित्य राष्ट्र का प्राण,
उस पर सर्वस करो समर्पण पर्वों नृप पाता निर्वाण।

+ मुनिवर को समझूं अर्चूं मैं वन में रहते काव्य रचें,
आदीश्वर को नमन करें जब देवीं खड़ी उन्हें अर्चें।
क्यों कर कैसे काव्य सुने हम ताड़ पत्र पर वे लिखते,
मुनिवर का मुख कमल मनोहर खिले प्रतक्ष भाव वर्तें।

(१०४)

सुन अशीस का काव्य मनोहर अतिशय सभा हुई हर्षित,
बोले नृपति आप सद् वक्ता तुम से आज हुवा परिचित।
तुमने अपना परिचय हमको दिया न अबतक की क्यों देर, ?
कवियों के साहित्य भवन में प्रतिदिन बैठो पड़े न फेर।

(१०५)

बोले भोज भूप त्यों उनसे हे ! कविवर शिशु के शिक्षक,
कोष नाममाला लिख रक्खा शिशु शिक्षा की लघु पुस्तक।
मुझे देख कर हर्ष हुवा है इससे करूं तुम्हें प्रेरित,
लिक्खो ग्रन्थ भेज देना तुम करूं प्रेरणा समयोचित,

(१०६)

आप समान सुकवि वर का है भाव पूर्ण छोटा सा ग्रन्थ,
अनश बनाया होगा कविवर तुमने कोई बड़ा ग्रन्थ।
अब तक जो रचना की होवे करना आप हमें अर्पण,
शिशु उपयोगी कृति का परिचय पाकर देता अभिनन्दन।

+ मौन धरें बोलें न कभी मुनिवर दूजे के कहने पर,
चैन न पड़ती बिना काव्य के सुने पूजते उन्हें अमर,
देश विदेशों के नर नारीं करें प्रशंसा बस्ती भर,
मैं भी शिक्षा लूंगा उनसे प्रेरित करता पूर्ण नगर।

(नाममाला की कृति पर प्रतिवाद)

(१०७)

कालिदास कवि भोज नृपति के सम्मुख बैठे चकित हुए,
बोले अहो ! प्रजा के पालक वणिक पुत्र कब सुकवि हुए।
नहीं नाममाला नृप है यह नाम मंजरी दूंगा नाम,
सेठ धनंजय ग्रन्थ न लिक्खें नहीं वैश्य का है यह काम।

(१०८)

कालिदास के साथ धनंजय कवि का था कुछ असमंजस,
इसीलिये वे लगे पलटने वीच सभा में उनका यस।
बोले नृप से वार वार वे पढ़ते गुप्त न रचते वेद,
यती महाजन वणिक पुत्र हों रचें न काव्य कोष परिछेद।

(१०९)

कालिदास की बात नृपति ने सुनी अनसुनी भी कर दी,
मन्त्री सभा चतुर सज्जन के कानों में आज्ञा भर दी।
करो न देर शीघ्र ले आना जो प्रति लिखी धनंजय ने,
बोलो ! चलो साथ में लेकर जो प्रति लिखी स्वयं तुमने। २

---

† वर्ण व्यवस्था में रण प्रति दिन करा रहे जग के ब्राह्मण,
षट् दर्शन के गले घोंटते होता द्विज वर्णों का मर्ण।
बुरे कर्म मानव गण ! तज दें थे देते समदर्शी वर्ण,
वर्ण न मिलें अंट में भगवन ! पुजें जन्म भर द्विज के चर्ण।

(११०)

पता न पाया सभासदों ने नृप ने प्रति को बुलवाया,
पर्वी बनें भोज भूपति ने नहीं ध्येय को बतलाया।
समझ न पाये सभी सभासद मंत्री ने नृप के कर में,
दे दी मूल धनंजय की प्रति मिले न रचना भू भर में।

(१११)

छिड़ा वाद था वहीं परस्पर किस ने रची नाममाला,
भोज भूप ने समझा मन में कालिदास मन का काला।
अहो! सुकवि की कृति को लोपे कहती प्रजा नगर भर की,
नाम मजरी नाम न इसका लिखी नाममाला करकी।

(११२)

न्याय करेंगे पूछा नृप ने आदर सहित धनंजय से,
क्या प्रमाण रखते हो कृति पर पता लगा लूंगा उससे।
नृप ने कहा प्रजा से पूछें क्यों करते प्रतिवाद व्यर्थ,
ग्रन्थ लिखो नृप के कोषों में रखदो होगा नहीं अनर्थ।

---

* अतिशय शिक्षा बढ़े प्रजा में थी यह भोज भूप की नीति,
शूद्र अशिक्षित रहें राष्ट्र में थी न भोज की यह दुर्नीति।
द्विज गण! गुरु बन चुके राष्ट्र के पा न सके थे शूद्र न्याय,
भोज भूप साहित्य प्रेमी करता प्रकट इसे अन्याय।

(११३)

स्वयं धनंजय कविवर बोले चतुर भूप सब समझ चुके,
मेरे घर से निजकर की प्रति आप मँगा लो छुप न सके।
शिशु जिज्ञासु सभी बुलवा लो उनको भी हम पढ़ा चुके,
कोष सुलेख प्रदर्शक प्रतिभा मणि के सम चमके न रुके।

(११४)

कालीदास धनंजय कवि को गौरव देते सके न देख,
बोले चट में अहो! महीपति वणिक न लिख सक्ते हैं लेख।
इतनी जल्दी बने विशारद कल देखे हमने उनको,
मानतुङ्ग मुनि फिरें दिगम्बर देते थे शिक्षा इनको।

(११५)

इतने अल्प समय में क्यों कर बनें धनंजय सेठ सुकवि,
अहो! महीपति उन्हें बुलालो मानतुङ्ग गुरु इनके कवि।
उनसे हम शास्त्रार्थ करेंगे परिचित हो जावेंगे भूप,
उनकी काव्य प्रभा को परखें कविता करें लखें चिद्रूप।

---

१ सादर किया निवेदन नृप से थे दुर्लभ नृप के दर्शन,
पूर्वपुण्य के बिना न मिलते हैं पृथ्वी पति के दर्शन।
पुण्योदय का अवसर पाया नृप से भेंट करी हमने,
फैली कीर्ति आप की जग में गाया सुयश धनंजय ने।

(कालिदास और धनंजय कवि का सम्वाद)

(११६)

गुरूदेव-मुनि-मानतुङ्ग की नहीं अवज्ञा सह सकते,
बोले सेठ धनंजय नृप से कालीदास व्यर्थ बकते।
अवसर पाकर गुरूदेव का परिचय करवा दूं नृप को,
यदि करना प्रतिवाद तुम्हें है करो निरुत्तर तुम हमको।

(११७)

मानतुङ्ग मुनि के चरणों के सन्मुख आप न टिक सकते,
करो प्रश्न हल कर दूं क्षण में तुम्हें निरुत्तर हम करते।
कैसे वेद सुवक्ता हो तुम देखें आज प्रतक्ष तुमें,
न्याय, कोष, साहित्य काव्य की शक्ति दिखा दो आज हमें।

(११८)

दूं तुमको भरपूर चुनोती करो वाद तुम कालीदास,
कई युग तक तुम बंद न होना तुम्हें वाद की लगी हुलास।
देता हूँ मैं तुम्हें समस्या अर्थ करो जग जन समझें,
अवक सवक हो अस्ति नास्ति हो समझा दो झगड़े सुलझें।

---

१ दीर्घ कालसे प्रजा जनों के शिशुगण ! चर्चा करते थे,
लिखा धनंजय कोष गुरु ने गुरुवर हमसे कहते थे।
हरण किया क्या परिचय दूँ मैं खोया कोष ढूंढ लेना,
शीघ्रग्रंथ हूँ नाम सुमाला मिले कोष हमको देना।

(११९)

यों विवाद छिड़ चुका सभा में कालीदास धनंजय का,
मबल पक्ष था समझे भूपति है कविराज धनंजय का।
स्याद्वाद के सत् सपक्ष में है सतवाद धनंजय का,
बोले भूपति चतुर गुरू है है कविराज धनंजय का।

(भोज भूप द्वारा मानतुंग मुनि को पकड़ाना)

(१२०)

कालिदास ने झुंझला करके कहा इन्हों से करूं न वाद,
अहो! प्रजापति इनके गुरु हैं करूं उन्हों से मैं प्रतिवाद।
मानतुंग मुनिवर आवेंगे देंगे सेवक जन सन्देश,
करते थे नृप यही प्रतीक्षा क्या मुनिवर देंगे उपदेश।

(१२१)

शास्त्रार्थ का कौतुक देखें बोले नृप होगा प्रतिवाद,
इससे भोज भूप ने अपना भेजा दूत किया न प्रमाद।
बोले भोज भूप सेवक से कहना मानतुंग मुनि से,
नृपने शीघ्र बुलाया तुमको दो सन्देश मधुर धुनिसे।

---

१. चतुर शिष्य गण! समझ चुके थे किया न कविवरने प्रतिवाद,
नाम धनंजय गुरु का बदला अमरकोष पर पड़ा विवाद।
नाम धनंजय कोष जैन कवि की कृति की चोरी की गई,
अमर कोष दे नाम चोर ने प्रकट किया कविता की नई।

(१२२)

मानतुंग मुनिवर के सन्मुख आया दूत कहा सम्वाद,
मुनिवर तुमको चलना होगा सभा बीच में पड़ा विवाद।
कहा दूत से मानतुंग ने राजा को उत्तर देना,
भूमि न जोतें वणिज न करते चाह न रखते कुछ लेना।

(१२३)

क्यों कर नृपति बुलावेंगे मुनि को क्यों जाना वहां जरूर,
कहना तुम अपने भूपति से जो सेवक समझे भरपूर।
वापिस आये सेवक क्षण में उत्तर दिया सुनो तुम भूप,
करें न कृषि कुछ वणिज न मांगें क्यों कर बुलवावेगा भूप।

(१२४)

पुनर्वार भूपति ने सेवक भेजे कहना काम जरूर,
तोभी मुनि ने बात न दूजी करी प्रगट थे तप में पूर।
इस प्रकार नृप के सेवक गण बार बार गये मुनिके पास,
वापिस आये हुए निराशित बोले सेवक थके उदास।

---

२ ऐसा ही प्रतिवाद पड़ रहा अमर कोष की रचना में,
कृति पर नाम बदल कर रक्खा बनें घोर दुर्घटना में।
सहयोगी कवि का वैभव अब देख न सके नाम बदला,
कविकी कृति का भाव न छिपता परखें भूपति काव्यकला।

(१२५)

कालिदास से कहा भोज ने मुनिवर यहां न आसकते,
करने लगे परस्पर सम्मति नृप उनको पकड़ा सकते ।
राजाज्ञा को प्रकट करे नृप यहीं छिड़ चुका प्रश्न जटिल,
मुनि पर चले न आज्ञा नृपकी पकड़ें नृपकी नीति कुटिल ।

(१२६)

मुनिवर का उत्तर यथार्थ है चले न उनपर जगका जोर,
चूंकि हमें मिलना मुनिवर से चितवत रहता हूं चहुं ओर ।
पकड़ें सेवक रखें कँधा पर ले आवें मुनि करें न जोर,
कहा सेवकोंसे नृप ने त्योंले आना मुनिवरको भोर ।

(१२७)

यों ही कहा भूप ने सेवक से भी जैसे पड़े सहल,
लेआना मुनिवरको चटसे अतिशय होगा तुम्हें सरल ।
मानतुङ्ग मुनि बैठे होंगे धरें हमेशा ध्यान अचल,
राज सभामें सीधे लाना पथमें करो न कुछ हलचल ।

(१२८)

क्रोधित कालिदास ने नृप का मन अकर्षित किया तभी,
सीधे साधे आप बुलाते राजनीति यह हो न कभी ।
मुनिवर को बंधवा कर पकड़ें बुलवा लेंगे सभा मझार,
हँस हँसकर नृप प्रश्न पूंछ लें फिर पीछेसे दें सत्कार ।

(१२९)

चले गए मुनिवर को लेने थे सेवक भेजे तत्काल,
मानतुङ्ग मुनिवर को पकड़े कंधे पर रक्खे सम्भाल ।
दूजे दिन के ही प्रभात में राज सभा में बैठाले,
मुनिवर ध्यानारूढ़ स्वयं थे वचन गुप्ति रखने वाले ।

(१३०)

भोज नृपति के कविगण! विनती करने लगे अहो! मुनिवर,
दो उपदेश सुनें श्रोता सब कहते भूप तुम्हें श्रुतधर ।
भोज भूप ने की प्रार्थना थी मुनिवर से ज्यों कईवार,
था उन पर उपसर्ग अहो ! यह इस से बोले नहीं लगार ।

(१३१)

नांक भौंह मुंह को सकोड़ कर बोले कालीदास तभी,
कर्नाटकसे निकले मुनिवर जीत न सकते सभाकभी ।
सभा देखकर चकित हुए क्या बोल न सकते एक वचन,
वाद न करते मूर्ख दीखते बैठे करके मौन ग्रहण ।

(१३२)

बोले भोज भूप मुनिवर को देता बन्दी ग्रह का दंड,
कभी किसी दिन भी बोलेंगे हैं साधू क्यों बने उदण्ड ।
दी आज्ञा नृप ने मन्त्री को दो मुनिवर को कारागार,
अड़तालीस कोठरी के भीतर रखना यों किया विचार ।

(१३३)

प्रति प्रति कोठों के जंजीरों में ताले मजबूत लगें,
पहिरेदार कोट के बाहर दें पहिरा मुनिवर न भगें।
नृपके वचन श्रवण कर मन्त्री बोला नृप ने कहा सही,
दुखी न करूं वन्दी गृह में बैठेंगे मुनिवर करें कही।

(१३४)

अड़तालीस कोठरी के भीतर बैठे मुनिराज - अहो !
अटल ध्यान मुनिवरने रक्खा था अतिशय उपसर्ग सहो।
मेरु समान अकम्प मुनीश्वर ने मनमें ज्यों मनन करो,
* भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभा(णाम)का रसना पर ध्यान धरो।

(भोज भूप के सहायक भूपों का सम्वाद)

(१३५)

भोज नृपति के मित्र राष्ट्र गण ! ने चर्चा यह सुन पाई,
मिले परस्पर वंशज नृप के बोले कैसी चतुराई।
कहलाता साहित्य दिवाकर उसने मति क्यों विसराई,
शीघ्र चलो उज्जैन नगर में भोज नृपति अपना भाई।

---

* मुद्योतकम् दलित पाप तमो वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन पाद युगं युगादा,
वालम्बनं भव जले पतताम् जनानाम्।

(१३६)

सुना न उसने भाव भयङ्कर बीता दृश्य गया क्योंभूल ?
क्योंकर हठकी भोज नृपति ने तजे न क्रोध पाप का मूल।
मानतुङ्ग मुनि द्वीपायन सम करें न क्रोध कहीं परिपूर्ण,
पड़े भयंकर प्रलय विश्व में टूटे नभ भू होगी चूर्ण। ३

(१३७)

अहो जला ! देंगे वे क्षण में सम्पूरण नगरी उज्जैन,
नृप गण ! तपकी शक्ति समझते थे बोले क्यों पड़े न चैन ?
क्यों कर भूल करी यह भारी ! बोले नृप हे! करुणाधीश,
करो नमन सब नृप गण!मुनिको मानतुङ्ग मुनि हैं जगदीश।

(१३८)

आये सभी भूप गण ! मिलनेको थे भोज नृपति के पास,
थी सबके मन में सुभावना करें भोज नृप से सम्भास।
पहुंचे ज्यों उज्जैन नगर में की नृप गण ने मिलकर बात,
दो सन्देश भोज भूपति को तुमसे मिलने आये भ्रात।

---

३ दृश्य न देख सकी चक्रेश्वरि उसने नभ से गमन किया,
कम्पित किये सुरों के आसन सुरगण ! को सन्देश दिया।
पद्मासिनि ने कहा अम्बिका जगदम्बा तूँ क्या करती ?
मानतुङ्ग गुरुवर की भक्ति तीन लोक कम्पित करती।

(१३९)

४ क्षुभित हुए उज्जैन नगर में वातावरण बढ़ा चहुं ओर,
मानतुंग मुनिवर को नृप ने कारागार दिलाया भोर।
कालिदास के कहने पर भूपति ने रोपा मुनि से वाद,
तप करते मुनि करें न आशा उन्हें न कोई हर्ष विशाद।

(वन्दीगृह के ताले टूटने का आश्चर्य)

(१४०)

बंदी गृह में बैठे मुनिवर धरें ध्यान हो रहे अडोल,
आदिनाथ सुस्तोत्र काव्यकी रचना करते झड़े सुबोल।
बंदीगृह के ताले टूटे खट् खट् खुलने लगे किवार,
मानतुंग मुनि बाहर बैठे करते तत्वों का सुविचार।

(१४१)

चौंक उठे दर्वान अहो ! क्यों खुले पड़े पूरण ताले,
भेजा था सन्देश भूपको अहो ! प्रजा के रखवाले।
बंदीगृह से बाहर मुनिवर आकर बैठे हैं निर्भय,
खुलीं कोठियां अड़तालीसों बोल रहे सेवक सविनय।

---

३ व्यन्तरनी रण चंडी ने वन में दुर्यश को वचन दिया,
वे सङ्गीत किन्नरी काली ने अनुचर को विदा किया।
दुर्यश ने विद्या के मद में गुरुवर मानतुङ्ग मुनि को,
पकड़ाया भूपति से उसने वन्दी गृह में ठूंस चुको।

(१४२)

बोले नृप सेवक से तुम क्यों करते भूल बड़ी भारी,
उसी प्रकार रखो मुनिवर को वंदी गृहके अधिकारी।
लौटे सेवक शीघ्र वहां से मुनि को कंधे पर रखकर,
बैठाले दृढ़ बंधन देकर अड़तालीस कोट भीतर।

(१४३)

खट् खट् खुले किवार कोट के मुनि अबंध होकर छूटे,
क्षण न लगी आवाज न आई क्योंकर वंदीगृह टूटे।
बैठे दीखे मुनिवर बाहर थे अतिस्वच्छ सुस्थल पर,
चौंक उठे दर्वान अहो! यह है अचरज बोले स्वर भर।

(१४४)

दौड़े गये अनेक सिपाही तत्क्षण भोज भूप के पास,
बोले एक साथ ऊंचे स्वर से सब सेवक हुए उदास।
अहो! भूप होती न भूल हम लोगों से है कहीं रती,
तृतिय वार कारागृह टूटा फटे आज दीखे धरती।

---

२ श्री, ह्री धृति, कीर्ति, लक्ष्मी देवीं अड़तालीस चलीं,
भोज भूप के बन्दी गृह को नभ से लखीं अनेक गलीं।
अधिष्ठात्री चक्रेश्वरि ने प्रति कोठों के तालों पर,
तृत्य गान कर करी चौकसी दृश्य न दिखा दिवालों पर।

(१४५)

अचरज करने लगे सभासद बैठे बीच सभा में भोज,
मानतुंग मुनि आकर बोले मेरी नृप क्यों करते खोज।
मुनिका दिव्य शरीर देखकर कांप उठे बोले नृप भोज,
दूंगा सिंहासन मुनिवर को बोले भोज भूप प्रतिरोज।

(१४६)

अतिशय आसन मेरा कांपे रहे न क्षण भर भी सुस्थिर,
कालिदास ने कहा भूप से क्षण भर में देखूंगा फिर।
कालीदेवी का आराधन कालिदास ने किया वहां,
आकर काली लगी देखने चकित हुई मैं जाऊं कहां।

(चक्रेश्वरी देवी द्वारा कालिका का दमन)

(१४७)

मानतुंग मुनिवर के पीछे चक्रेश्वरी खड़ी देवी,
उसने काली को झिनकारा भगी भयंकर वनदेवी। ५
क्यों कर आई यहां बता दे मुनिवरको क्या दुख देती?
देखूं तेरी करूं दुर्दशा भग जा स्वयं सोच लेती।

---

३ शब्द हुवा खट खट होता था कूंरे कौन किवारों पर,
नृप के सेवक दौड़े देखें नजर डालते तालों पर।
क्षण में ताले खुल २ जाते बोलें सेवक दिखे न नर,
अधिक सुरीली आवाजों से गातीं क्या देवी भीतर!

(१४८)

डांट डपट कर कालीदेवी से बोली. चक्रेश्वरी खड़ी,
अहो! कालिका दुष्ट रूपरख क्या करती थी खड़ी खड़ी।
मुनि महात्माओं को तूं ने देना कष्ट उचित समझा,
तेरे बल पर दुर्यश गर्जे भूपति क्यों करके उलझा ?।

(१४९)

मानतुंग मुनिवर की आसन पद्माकर सिंहासन पर,
कालिदास औ भोज भूपने देकर नमन किया सादर।
मुनि के चरणों पर कालीदेवी ने अपना सिर रक्खा,
कर प्रार्थना बोली मुनिवर क्षमा करो तुमको परखा।

(१५०)

प्रकट हुए पद्माकर कविवर मानतुंग मुनि चारों ओर, ६
थी पद्मासन पद्माकर की चला न काली का कुछ जोर।
चक्रेश्वरी खड़ी थी सन्मुख थी पद्मासिनि मुकुट धरें,
तीनों देवीं भोज नृपति के संगमें मुनि को नमन करें।

---

६ शीघ्र खोल देतीं थीं ताले देवीं अट्टतालीस खड़ीं,
चर्चा करें परस्पर में वे मुनि को जंजीरें जकड़ीं।
नभसे स्वर भर आवाजें हों नृप ने मुनि को क्यों पकड़े ?
अचंभ करते खड़ी हेलियां करें सांकलों के टुकड़े।

(१५१)

इस कौतुक को देखा सम्पूरण नगरी के लोगों ने,
किया प्राश्चित भोज भूपने अतिशय नृपति लगे रोने।
कालिदास लज्जित हो बोले मैंने मुनि को दगा दिया,
करूं प्राश्चित हूं कृतघ्न मुनिवर ने मुझे पवित्र किया।

(१५२)

अम्बर, उदधि भूमिकी उपमा देकर सुन्दर काव्य रचे,
भाव पूर्ण अतिशय गुण भूषित वृषभ नायके गुण अर्चे।
विनय भाव से भोज भूपने लिखवाया भक्ताम्मर को,
जग में विघ्न दूर कर देता इससे प्यारा जग भरको।

(१५३)

उस सुस्तुतिको आप पढ़ चुके की हिन्दी में तुक बन्दी।
आदीश्वर का यशोगान कर सुस्तुति जग जन ने वन्दी।
मानतुंग मुनि ने जो सुस्तुति रची संस्कृत में सज्जन,
कारागृह में काव्य रचे थे बना लोकमत भय भंजन।

---

३ पद्म द्रह से कमला देवी ने मुनिवर के चरणों पर,
खिले फूल कमलों के रक्खे उन पर अधर नये किधर।
पद्मद्रह मुनि के चरणों के सन्मुख रचादेवियों ने,
मानों कमलों के वनमें बैठ मुनि पाये कवियों ने।

(मानतुंग मुनिराज को वन में पहुंचाना)

(१५४)

मुनिवर मानतुंग गुरु को सादर पहुंचाया था वनमें,
भोज भूपने भक्ति प्रकटकी विनय सहित मन वच तन में। ७
ख्याति कथाकी छाया लेकर प्रेमी ! ने लिक्खा समुचित,
हिन्दी भाषाके भाषी गण ! हों भक्ताम्मर से परिचित।

(१५५)

लिख न सका मैं भाव अणु भर भक्ताम्मर के भावों का,
प्रभु की भक्ति वसी थी मन में था ऋण हिन्दी शब्दों का।
मानतुंग गुरु के भावों का हो प्रचार कर सका प्रयत्न,
"पर्खी पाठक ! अवश कहेंगे है हिन्दी का अनुपम रत्न।

(१५६)

दर्पण सम भावों का दर्शक मैंने देखा भक्ताम्मर,
किया प्रेरित मुझ को हिन्दी में लिख देगा पीताम्बर।
खड़ी चक्रेश्वरी शारदा लगी पद्य लिखवाने को,
हिन्दी बनी भवानी आगे चली भाव दर्शाने को।

---

४ प्रकट कर रहा नाम नगर का थी उज्वल नगरी उज्जैन,
पाचों पापों को समूल से तजें उन्हें कहते हैं जैन।
भोज भूप ने इसीलिये था कहा नगर इसको उज्जैन,
जैन सुकवि ने विजय प्राप्त की कवियों ने कहदी उज्जैन।

(लेखक का परिचय)

(१५७)

मन्नू लाल गुप्त का सुत हूँ है पीताम्बर मेरा नाम,
बांमा पोष्ट पथरिया वासी लिखना जिला दमोहग्राम।
आदि अनादि धर्म के वक्ता आदिनाथकी लेखकने,
सुस्तुति लिखी भाव दर्शाये पद्य बनाये सेवक ने।

(सहायक की कृतज्ञता)

(१५८)

श्रेष्ठ वर्य थे दानवीर जी जैन सुकुल भूषण शुभ नाम
माणिकचंद जोंहरी थे जो करते बम्बई में विश्राम।
साम्प्रति युगमें जैन जगत को उनने पूरण अपनाया,
उनको भूल न सकते शिशु गण ! जिनने शिक्षित करवाया।

(१५९)

मैने जो कुछ लिखकर भेटा है उसमें सम्पूर्ण श्रेय,
माणिकचंद सेठके श्रमको करता सफल दिलाता ध्येय।
जीवन भर में यत्न करूंगा प्रभु के गुण भू मंडल में,
गाते रहें सदैव गृही जन गूंजे ध्वनि नभ मंडल में।

---

५ दुर्दशा के सिर पर तूं बैठी अरी ! दुराग्रह करती तूं,
दुर्जन जन आमिष का भक्षण करें उन्हें दे धमकी तूं।
तेरी मूरत देख भयङ्कर जग के जन करते आलाप,
मरी पड़े अग बचो वहां से दुष्ट कालिका देती ताप।

(कीर्तन)

(१)

सुस्तुति पढ़ी परिचय किया पर्सा सुमन से ज्ञान ने,
सुनकर प्रसन्न हुए अहो ! कीर्तन कराया ध्यान ने।
शीतल प्रसाद ! सुधर्म भूषण ब्रह्मचारी का अहो,
कीर्तन करूं अनभिज्ञ मैं होता कृतज्ञ सदा रहो।

(२)

लेखक न भूले आपको भूले न जैन जगत कभी,
जैनोन्नति दर्शक सुपथ दर्शा दिया तुमने सभी।
लाखों सुता सुत को दिलाई है सुशिक्षा आपने,
हे ! पूज्यवर ! निस्वार्थ सेवा की हमेशा आपने।

(३)

साम्प्रति समय के जैन जग को आपने नूतन दिया,
पाकर प्रसंग कृतज्ञ हूँ आभार ने मन हर लिया।
सन्मान देता आपको नेता ! प्रणेता ! मानकर,
भक्ताम्बर ! ले भेंट करता आपको पीताम्बर।

---

५ अतिशय सुन्दर तन चक्रेश्वरि का ज्यों काली ने निर्खा,
लज्जित हुई कालिका बोली तेरा सुन्दर तन पर्खा।
चक्रेश्वरि ने कहा पापियों को तन दिखला कर धमका,
उन्हें भयङ्कर द्रश्य दिखाकर काली परिचय दे तनका।

(४)

सुस्मर्ण करती लेखनी पायी सुसम्मति आप से,
दी शोध कृपया आपने सह धर्म प्रेम प्रताप से।
आभार स्वीकृत मैं करूं अपने वचन अलाप से,
कीर्तन करूं प्रभु का प्रकट बचते जगत जन पाप से।

(प्रकाशक की प्रार्थना)

(१)

मेरे पूज्य जनक ने लिख दी वृषभनाथ की जो सुस्तुति,
पाठक ! पढ़ें प्रेम से उसको सादर करता हूँ प्रस्तुत।
करूं प्रकाशक वर्ते सत्पथ रखूं बन्धुओं के सन्मुख,
संकट रहे न विश्व भूमिमें मन, वच, तनसे टलते दुख।

(२)

परिचित शिशु जिज्ञासु उन्होंसे पंडित पूज्य गणेश प्रसाद,
दी अशीस उनने शिशुओं को सिखलाये हैं शुभ संवाद।
गुरु गणपति सम पूज्य हमारे, उनका करता हूँ अर्चन,
जिनने सुपथ सुझाया हमको सीखे शिशु जैन दर्शन।

---

६ कमल सुमन की अतिशय उपमा दे भक्तामर प्रकट हुआ,
पद्म नाम पड़ रहा कमल का कोषों से मालूम हुआ।
किया प्रमाण यही लेखक ने पद्माकर का दूजा नाम,
मानतुङ्ग मुनिवर का समझा अर्चन करके किया प्रणाम।

(३)

सुस्तुति प्रभुकी करूं प्रकाशित हर्षित हुए वचन तन मन,
श्रीप्रभु वृषभनाथ के चरणों में रखता हूँ सीस सुमन।
सुपथ प्रदर्शक आर्य भूमि के निर्माता को करूं नमन,
विश्व भूमि में कीर्ति प्रभू की फैली करती पाप समन।

प्रार्थी, प्रकाशचन्द विद्यार्थी
सतर्क सुधा तरङ्गिणी जैनशाला
सागर

महावीराष्टक

(१)

उत्पाद व्यय ध्रुव से पलटते, जीव जड़ निजरूप को,
दर्पण समान ज्ञान में भाषित करें तद्रूप को।
रविसम सुपथ दर्शक प्रभो दर्शी अनन्त स्वरूप के,
वे वीर प्रभु द्रग में बसें दर्शक बने चिद्रूप के।

---

६ कवि की कृति का परिचय प्रति में अतिशय उपमायें देतीं,
नाम पलटदें कुकवि यूँकि पलटें न अर्थ वे कछु देतीं।
नाम न चाहें सुकवि जगत में परिचय कवितायें देतीं,
हों कविता आभार छन्द में कवि का कीर्तन कर देतीं।

(२)

जिनके न क्रोध रहा अणु होते न उनके लाल द्रग,
वर्तें सदा उत्तम क्षमा, मन, तन, बना उनका दुरग।
अतिशय अपूरव शान्ति मुद्रा हो विमल चिद्रूप के,
वे वीर प्रभु द्रग में बसें दर्शक बनें चिद्रूप के।

(३)

करते नमन सुरपति उन्हें मणि के मुकुट पग में पड़े,
पद पद्म में फैली प्रभा निरखें मुकुट मणि सुर खड़े।
सुस्मर्ण सुर करने लगे उप शान्ति जल अनुरूप के,
वे वीर प्रभु द्रग में बसें दर्शक बनें चिद्रूप के।

(४)

मंडूक ने अनुमोदना की पूजने प्रभु को चला,
पाता अनेक समृद्धियां सुर पुर मिला उसको भला।
पूजें तुम्हें सद भक्ति से लें मोक्ष सुख निज रूप के,
वे वीर प्रभु द्रग में बसें दर्शक बने चिद्रूप के।

---

७ भोज भूप ने श्रावक के व्रत स्वीकृत किये प्रभाव बढ़ा,
समदर्शी गुरु मानतुङ्ग का अर्चन करके सुख लहा।
भोज भूप ने अणुव्रत पाले थे मुनिवर के चरण कमल,
उनकी की कीर्ति विश्वपर गायी जाती यहां प्रभाती चिर।

(५)

कंचन वरण तनको धरें तन से रहित हैं ही प्रभो,
भारते न एक अनेक भव सिद्धार्थ नृप के सुत विभो।
गति से रहित गति को धरें आश्चर्य देखा ढूंढ़ के,
वे वीर प्रभु दृग में बसें दर्शक बने चिद्रूप के।

(६)

निर्मल वचन जिनके खिरे त्रैलोक भाषित ज्ञान में,
गंगा समान प्रभा धरें जग जन मगन सुस्नान में।
उसमें विशारद जन तरें हैं हंस ही अनुरूप के,
वे वीर प्रभु दृग में बसें दर्शक बने चिद्रूप के।

(७)

पल में परास्त करे अहो! त्रैलोक के प्राणी सदा,
है काम योधा अति विकट जीतें न जग के जन कदा।
जीता तरुण वय में उसे जग जीत पद चिद्रूप के,
वे वीर प्रभु दृग में बसें दर्शक बने चिद्रूप के।

(८)

जो मोह रूपी रोग हरते वैद्य आकस्मिक मिले,
निस्वार्थ बन्धु समान जो उपकार कर देते भले।
आश्रय अपूरव दें अभय मुनि मार्ग को अनुकूल के,
वे वीर प्रभु दृग में बसें दर्शक बने चिद्रूप के।

(कवि की प्रभाव शालिनी कृति का कीर्तन)

(९)

सुस्तोत्र की प्रति को लखें पावें सभी शिव पथ अमर,
"कवि भागचंद" सुकाव्य यह, लिख भेंट करते हैं चतुर।
करते प्रशंसा विज्ञ जन कृति महावीराष्टक लखें,
प्रतिविम्ब दर्शक पर पड़े जिज्ञासु सत्पथ को लखें।

(१०)

मेरे सहायक मित्र ने हिन्दी लिखी इस काव्य की,
सुस्मर्ण कर स्वीकृत करूं प्रति कृति बुद्धूलाल की।
मन की प्रकृति सद्बोध से मिलती परस्पर ही स्वयम,
लिखनें लगी उत्साह से उनकी कृतज्ञ बनी कलम।

[महावीर स्वामी]

(१)

जय ! महावीर ! जिनेश जय ! आभार मानें आपका,
जग को बताया आपने साहित्य मोक्ष मार्ग का।
जग ने सुयश गाया अहो ! तुमने मिटाया पाप था,
फैले अहिंसा लोक में प्रभु का प्रथम आलाप था। *

सम्पूर्ण जग पर श्रेय है प्रभु आपके उपदेश का,
उपकार के आवर्त में है जग कृतज्ञ जिनेश का।
फैली प्रभा प्रभु की खिली [illegible] हरण आताप था,
धर्मी अमल जन ने उसे फैला प्रकाश प्रताप का।

(२)

आदर्श प्रभु के तत्व थे स्वीकार भारत ने किये,
    उपकार का आभार माना विश्व को दर्श दिये।
वर्णन विशारद कर चुके वह वीर का दर्बार था,
    समझा सभी जग ने जहां से धर्म का आधार था।

(३)

निर्भीक भारत भूमि के सन्मुख दुराग्रह वार था,
    उसके दमन के ही लिये प्रभु वीर का अवतार था।
थी शक्ति अनुपम वीर की निर्भीक सत्याग्रह किया,
    हिंसा हटा दी राष्ट्र से हिंसक न जग जन बनने दिया।

(४)

उपदेश देकर आपने जग को बनाया वीर था,
    विचरे जगत के जन अभय कर में न कोई तीर था।
थी मित्र के सम द्रुष्टि उनकी नर तिर्यंचों पर पड़ी,
    हर्षे सभी जग जन अहो! प्रभु ने समस्या की खड़ी।

(५)

पशु का करें आघात नर इसको न कर सकते भरम,
    अतिशय उन्हें दुख हो अहो! कहते इसीको पाप हम।
पशु पर भक्षण करते मनुज समझें न पापों से डरें,
    नर नीति के पीछे गले पशु के प्राण मनुज हरें।

(६)

विज्ञान से पक्षी मनुज पशु प्राकृतिक विचरे निबल,
उन पर न शस्त्र चला सके मानव प्रकृति जग में प्रबल।
करते अमानुषता अधिक तुम आप अपने सोचलो,
विज्ञान उत्तर दे तुम्हें तो हाथ को संकोच लो

(७)

निजके समान न जो समझते दूसरों का आत्मबल,
विश्वास घात करें दनुज छल से जगत लूटें निबल।
करते न छल जगमें सबल करके प्राप्त निजात्मबल,
जग को बनाते हैं अभय जग ने कहा उनको प्रबल।

(८)

कायर बने भूले मनुज करते अनेक प्रकार छल,
दूजे दनुज दें कष्ट उनको कष्ट उठें पड़ते उछल।
सुस्मर्ण हो जाता अहो ! कहते स्वयं करते न छल,
पड़ते न परवश हाय ! हा ! आक्रोशना करते प्रबल।

(९)

फांसे दनुज ने आपको औकष्ट देने को ठगा,
करने लगे तुम प्रार्थना देंगे न हम तुमको दगा।
आधीन हो सन्मुख खड़े बोले हमें छोड़ो कुशल,
मांगा सदय का दान भी स्वीकृत किया भागे उछल।

(१०)

जग पर किया प्रभु ने विजय प्रभु का क्षमा व्रत शस्त्र था,
दुर्मन पलटने को अहो ! उपदेश प्रभु का चक्र था।
थे आप समदर्शी विमल समझे समान सभी सुजन,
हिंसक मिटे हिंसा मिटी जग ने अहिंसा की ग्रहण।

(११)

जय, महावीर ! अभय प्रभो ! तुमने जगत निर्भय किया,
करके दमन दुर्मन अहो ! संयम सुमन जगको दिया।
श्री मुख कमलसे मेघ सम निकली मधुर ध्वनि आपकी,
साहित्य की जननी सरस्वति विश्व ने सुस्थाप की।

(१२)

नर वृन्द पशु गण ! ने सुनी वह सुपथ दर्शक सरस्वती,
करने लगे निर्णय मनुज करते सुधार बने यती।
आघात करने की समस्यायें उठा दीं राष्ट्र ने,
हिंसक कुवेदों को तजे सम्पूर्ण ही संसार ने।

(१३)

प्राचीन वेद अखंड थे उनके प्रचारक विश्व पर,
बिखरे सदय वर्णन किया महवीर ने इस भूमि पर।
सम्पूर्ण प्रश्नों का किया हल बन चुके सुखिया सभी,
शंका मिटे गौतम चले उपदेश सुनने को तभी।

(१४)

स्वीकृत किये उपदेश गौतम ने प्रशंसा कर कहा, ८
करता महाव्रत हूँ ग्रहण मिट जाय जन्म जरा अहा ! ।
निश्चय किया हिंसा समान न और जग में पाप है,
फैले सदय बाता वरण मँहवीर का आलाप है ।

(१५)

धमका महा भारत अहो ! क्रन्दन मचे मूर्खों मरे,
थे कर्म बिगड़े राष्ट्र के बलिदान के वर्णन करे ।
मानव बने दानव अहो ! थे मांस भक्षण कर चुके,
नर नाहरों के सम बने हिंसक कुवेद लिखा चुके ।

(१६)

द्विज वृंद ने सविनय कहा मँहवीर ने जीती मही,
पांचों अणोव्रत पालने की रीति जग जन से कही ।
पांचों महाव्रत कर ग्रहण आदर्श तप धारण किया,
मँहवीर के उपदेश अमृत को जगत भर ने पिया ।

---

८ प्रचलित कथा है विश्व में था दैत्य वृत्रासुर यहीं,
उसने उदधि में वेद मत फेंके पता लगते नहीं ।
हा ! हाय ! राक्षस वंश में ऐसे अनेकों हुए थे,
हिंसक विधान लिखा चुके प्राचीन वेद विरुद्ध थे ।

(१७)

सन्मुख समस्यायें खड़ीं थीं जब द्विजों के पास में,
जग ने कलह कर रण रचे डूबे जगत जन पाप में।
बीते युगान्तर युग उपस्थित हिंसकों के साथ में,
हिंसक बनाये वेदमत थी कलम द्विज के हाथ में।

(१८)

हिंसक बना जब आर्यमत बलिदान के वर्णन किये,
थे मांसके लोलुप दनुज द्विजने न युग परिचित किये।
उनका विरोध न कर सके संयम न कर पाये ग्रहण,
साम्राज्य वश परवश पड़े आभार अंकित विप्र गण।

(१९)

बलिदान में हिंसा लिखी वे विश्व से कहने लगे,
प्राचीन वेदों में लिखा समझा दिया जग को ठगे।
चहुं ओर से हिंसक निशा ने विश्वको अन्धा किया,
जग जन निशचर सम बनें जब वीर ने रवि रख दिया।

---

८ हा ! हाय ! हा ! बनने लगे ज्यों मांस भक्षी राष्ट्र गण,
दुर्मुख प्रमुख पद पा झुके लेना पड़ी उनकी शरण।
आमिष भखी, हिंसा करी, हिंसा कराने को लगे,
प्रेरित किये करके विवश सम्पूर्ण जग के जन ठगे।

(२०)

प्रभु वीर के उपदेश ने जग को महाव्रत दे दिये.
स्वीकार द्विज गण ने किये हिंसक विधान हटा दिये।
दर्शे सुपथ नूतन रचे उद्धार वेदों के किये.
उन पर अहिंसा की मुहर दी विश्व ने अपना लिये।

(२१)

थे लोकमान्य अहो! तिलक* वे विश्व को दर्शा चुके.
थे महावीर प्रभो! यहां जो सत् सुवेद बता चुके।
मैं मानता हूँ वेदमत प्राचीन था इस भूमि पर,
उसमें मिलाये भाव हिंसक हिंसकों ने खुनकर।

(२२)

गुंजी मधुर ध्वनि विश्व में हिंसक विधान न चाहियें,
साहित्य समदर्शी लिखे सुख शान्ति जग को चाहियें।
कहने लगे जग जन सभी प्राचीन वेद हमें मिले,
महवीर के सर्वाङ्ग से निकले कमल के सम खिले।

* हिंसा बढ़ी जग में अहो! शोणित वहा था राष्ट्र में,
था वेग धर्म यतो मतो का डूबते थे हाय! मैं।
अंकित अहिंसा की मुहर प्रभुवीरने की वेद पर,
हिंसक विधान हटा दिये साहित्य दर्शाये अमर।
(१३ दिसम्बर सन् ११ पूना केसरी)

(२३)

हिंसा जगत जन ने तजी कहने लगे निर्भीक हो,
श्री वीर के साहित्य से ही वेद फिर निर्णीत हो।
सरिता समान प्रवाह सम साहित्य गूंजा ओर से,
होने लगा पावन जगत आलाप था चहुं ओर से।

(२४)

सूझे विधान, पुराण संयम तत्त्व की चर्चा चली,
अधिकार मानव ने लखे विपदा परस्पर की टली।
स्वीकृत किये थे पर्वव्रत पाले उन्हें सु प्रथा चली,
भागी अशान्ति प्रलाप कर प्रभु वीर की वाणी फली।

(२५)

सन्मार्ग के आदर्श मत का भूमि पर सूरज खिला,
चहुं ओर से रव गूंज कर के लोकमत लाया मिला।
प्रभु वीर की प्रतिभा मनोहर ने हरण मन का किया,
भूले जगत को आत्म गौरव का सुपथ दर्शा दिया।

(२६)

वात्सल्य प्रेम प्रचार का सन्देश पाया विश्व ने,
सुक्ष्म अहिंसा धर्म पर सुस्थिर किये प्रभु विज्ञ ने।
आभार उनका विश्व पर स्वीकार जग जन ने किया,
सम्पूर्ण भारत वर्ष ने तुम से अहिंसा व्रत लिया।

(२७)

थे आप समदर्शी प्रभो ! जग को सिखाया आपने,
ज्यों साम्यवाद प्रकट हुवा मानव प्रकृति के सामने।
सीखे सभी थे वाद करना वीर वादी बन चुके,
उननें अहिंसक विश्व कर डाला जगतजन कह चुके।

(२८)

प्रतिवाद जग जन ने किया उनने बनाया लोकमत,
बोले सभी स्वर एक से हैं वीर के उपदेश सत्।
लिखने लगे साहित्य वे महवीर पथ दर्शक बने,
स्वाधीनता से कर सके कल्याण जग के जन घने।

(२९)

संकल्प करना पाप है मानव न कर सकते कभी,
लिखते विशारद वेद में संकल्प को तज दो सभी।
पालन कराया आपने जग को अहिंसा धर्म का,
स्वीकार भारत ने किया निर्भय अहिंसा कर्म का।

(३०)

अविशय विराग धरें मनुज करते न वे संकल्प को,
अनुराग पूर्वक त्याग में आदेश था अल्पज्ञ को।
बिचरें परस्पर में पशु फिरते मनुज भू पर अभय,
नर औ पशु ने भी विकृति तज दी परम पाला सदय।

(३१)

गाता सुयश महँवीर का साहित्य भारतवर्ष में,
दौड़े प्रचारक विश्व पर फैली दया सर्वत्र में।
भूले जगत जन थे प्रभो ! हा ! रङ्ग रहे थे खून में,
तुमको गला घोंटू मिले हा ! हाय ! भारत भूमि में।

(३२)

निर्भय, विमल मनसे प्रभो ! परिचय कराया आपने,
हिलता न मेरु शिखर कभी आता प्रलय जब सामने।
हिंसा, असत्य, कुशील को तज दें जगत के जन सभी,
चोरी तजें, संयम सजें, थे वीर के दृढ़ व्रत सभी।

(३३)

अपने वचन बल से अहो ! पल्टे निबल मन आपने,
उनने तजी मनकी मलिनता की प्रतिज्ञा सामने।
गम्भीर तत्वों को सुना महँवीर हों न अशक्त जन,
लेते न शस्त्र सशक्त नर करते कुमन का वे दमन।

(३४)

था वीर का व्रत विश्व को निष्पाप करने का सही,
उनने विरोध नहीं किया उनको ऋणी पूरण मही।
कहने लगे भारत अहो ! हमको बनाया वीर ने,
निष्पाप विचरे विश्व में था व्रत सिखाया वीर ने।

(३५)

अपकारियों का आपने उपकार कर जग से कहा,
चारों वरण जग जायंगे लघु दीर्घ भेद नहीं रहा।
श्रृंगी नखी पशु प्रेम से उपदेश सुनने को चले,
निर्भय हुए बोले प्रभो ! नर घोंटते पशु के गले। *

(३६)

उपकार के बदले हमें क्या कष्ट देना है धरम,
बर्से सुधारस वीर के नर का नहीं है यह करम।
मँहवीर ने वर्णन किया जग में अहिंसा धर्म का,
सम्पूर्ण भारत ने कहा आया समय उत्कर्ष का।

(३७)

होने अधीर न वीर थे आघात जग जन ने तजे,
वात्सल्य से परिचित किये जग के जगाने को सजे।
गर्जे गगन में मेघ बर्से भूमि निर्मल हो गई,
त्यों वीर का उपदेश पाकर विश्व में शान्ती हुई।

नर नारियों ने यों कहा मृगपति हिरण जल पी रहे,
इक साथ में देखे वहां मँहवीर जँह तप कर रहे।
गो सिंह ने मस्तक रखा मँहवीर के युग चर्ण पर,
मृगपति प्रदक्षिण कर रहे सुनते पशु बैठ निडर।

(३८)

यें महावीर सदय अहो ! गुण गान द्विज करने लगे,
भयभीत रखते शस्त्र को उनने जगत के जन ठगे।
मँहवीर शस्त्र न अस्त्र लें निर्भय पलटते विश्व को,
दुर्मन सुमन उनने किये हटवा दिये दुष्कृत्य को।

(३९)

प्रभु ने किया जो स्वावलम्बन में अधिक बाधा हुई,
धरणेन्द्र कम्पित हो गया उसकी सभी क्षमता गई।
बोला प्रभो ! मैं आप का सेवक बना सेवा करूं,
मँहवीर प्रभु का मैं सहायक हो सकूं बाधा हरूं।

(४०)

आज्ञा मिले मुझ को प्रभो ! सेवा करूं मैं आपकी,
महँवीर से धरणेन्द्र ने आवाज यह आलाप की,
प्रभु का सहायक बन सकूं शंका मिटे आघात की.
करदूं विवश भू कम्प कर मर जायें जग के पातकी।

(४१)

उत्तर दिया प्रभुवीर ने स्वाधीन सेवा राष्ट्र की,
करते न सेवा आप अनरथ कर रहे क्या बात की।
करती प्रकृति निर्माण समयोचित मनुज के भाग्य की,
शंका तजी थी वीर ने ! जग के सभी अनुराग की।

(४२)

स्वाधीनता के ध्येय में क्योंकर सहायक बन सको ,
निज आत्म बल की शक्ति हो तो तुम महाव्रत धर सको ।
लेते न वीर वसुंधरा पर का सहारा भी तजें ,
जीतें प्रकृति तज दें विकृति करते सुतप समता सजें

(४३)

जग के निवासी हैं निबल उनको सहारा दीजिये ,
असमर्थ को सामर्थ्य करने की प्रतिज्ञा कीजिये !
पल्टो न भू , भूकम्प से करदो मनुज के मन सुमन ।
निश्चय करो धरणेन्द्र तुम पर्खें महाव्रत वीर जन ।

(४४)

अनुपम विरागी मार्ग था जो वीर ने धारण किया ,
सुख शान्ति के आदर्श से जग ने उसे अपना लिया ।
यदि वीर के उपदेश हमको भूमि पर मिलते नहीं ,
होता प्रलय निश्चय अहो ! नभ टूटता फटती मही ।

(४५)

सम्पूर्ण जग पर वीर के उपदेश की प्रतिभा पड़ी ,
वर्से रतन साहित्य रत्नों की लगी मानों झड़ी ।
निज प्राण के रक्षक रतनप्रभु के सुमुख से भूमिपर ,
वर्से घनाघन मेघ सम फैली जगत भर में खबर ।

(४६)

मँहवीर की वाणी प्रसव करती अमित साहित्य का, *

नर पशु कृमी खग सुर असुर को पाठ दे सत्कृत्य का।

परणत हुई अतिशय सुभाषा में अहो ! समझे सभी,

बोले सदय सुख प्राप्त कर पाया न यह अवसर कभी।

(४७)

अज्ञान ईर्षा का हरण मँहवीर ने जग में किया,

शशि सूर्य सम चमकी प्रभा जगदीश का पद पा लिया।

गार्हस्थ धर्मी हों न निर्बल हों अकम्प मनुज सभी,

ले नाम जग मँहवीर का हट जाय कायरता अभी।

(४८)

जय वन्त वर्तो विश्व में भगवान् "महावीर" तुम,

सम्पूर्ण नर, नारी, पशु पक्षी, सुने पाले धरम!

प्राणियों के प्राण जग में आप जग रक्षक विभो!

सुर, नर, असुर के आप ईश्वर आप भू पर थे विभो।

आम्नाय पंथ समाज संस्थायें रचीं उपदेश दे,

उनने किया अनुकर्ण नूतन धर्म का सन्देश दे।

प्रभुवीर का दर्शन अहिंसा विश्व का मन बन गया,

चारों चरण दीक्षित हुए सर्वत्र में फली दया।

(४९)

दे दो क्षमा का दान हमको है हमारी प्रार्थना,
करके विवश हमने तुम्हें सादर सुनाई भावना।
इकवार साम्यो पान्त ही फिर से मनन कर लीजिये,
भूलें रहीं हो पाठको ! उनको प्रकट कर दीजिये।

(५०)

सज्जन जनों के हाथ में मैं दे रहा पुस्तक अभी,
निर्दोष काव्य न लिख सका करना क्षमा पाठक ! सभी।
भाषा न श्रेणी बद्ध है मैंने न काव्य किया कभी.
भावार्थ औ शब्दार्थ से हूँ ही अपरिचित मैं अभी।

(५१)

परिचय दिया महवीर का लेखक चला करने विनय,
करते प्रदान क्षमा सभी उत्साह दे करते अभय।
प्रिय दूर वर्ती पाठको ! पीताम्बर करता प्रकट,
वात्सल्य धर्म प्रदान कर सन्देश देना निष्कपट।

॥ सहायक मित्रों का कीर्तन ॥

(१)

सागर के परवार सघंया उनका नाम जवाहर लाल,
सतना वासी सिंघई मित्रवर ! धरमदास जी नन्हूलाल।
अमरावती नगर में रहते परिचित संघी पन्नालाल,
सौ सौ प्रति भक्तामरकी ले पहिनी गुरुवर की जयमाल।

(२)

पंडित पूज्य उन्हें आदर दूंगा मैं देता रहा प्रत्यक्ष,
गुरुसम धन्नालाल शास्त्री से बम्बई में मिला समक्ष ।
गुरु गोपालदासके लेखों ने समाज कर दिया सुबोध,
हीराचन्द सेठ के लेखों ने त्यों हरण किया दुर्बोध ।

(३)

प्रियवर मित्र सुकवि संपादक जैन जगत में परिचय दे,
दी सम्मति थी प्रेम पूर्वक पद्य बना हिन्दी लिख दे ।
चतुर समालोचक सम्मति दें पंडित जी दर्बारीलाल,
दोष पद्य रचना में होंगे उन्हें शोध दें बने विशाल ।

(४)

मगन बहिन के धर्म प्रेम ने नारी जग को जगा दिया,
प्रभु का कीर्तन धर्म बन्धु ने लिखा उन्हें सुस्मर्ण किया ।
जनक आपके और कुटुम्ब का पा आश्रय सीखा भाषण,
दानवीर का ध्येय सफल हो सदा करेगा उच्चारण ।

(५)

गूंथी माला मानतुङ्ग मुनिवर की लिखकर सुमन धरे,
परिचय पावेगी समाज पढ़करके हृदय पवित्र करे ।
सर्व समाज स्वीकृत करती मानतुङ्ग मुनिका आभार,
उत्सुक का उत्साह बढ़ा दे लिखूं पद्य में करूं प्रचार ।

(६)

मानतुङ्ग मुनिवर की माला में दें पाठक ! नाम लिखा,
श्रीमान गण ! बनें सहायक दें सहायता द्रव्य दिखा।
खड़ी सुबोली में मन रंजन करने वाले छपें ग्रन्थ,
प्रकट करादें मानतुङ्ग माला में कविता जगे सुपंथ।

(७)

देंगे पत्र शास्त्र दान के करने वाले सज्जन वृन्द,
बोली खड़ी बनाकर लिख दो पढ़ें पद्य पावें आनन्द।
देंगे न्योता इस ग्रन्थ की देना तुक वन्दी करके,
वाता वरण बने जागृति कर गादें पंचम स्वर भर के।

(८)

चंचल चपला सम न अमर धन हो प्रचलित साहित्य अमर,
पत्र लिखाकर शास्त्र दान दें हो उनका सुस्मर्ण अमर।
चार दान दें संयम पालें उनका अर्चन करें अमर.
प्रभुकी सुस्तुति कर तन तज दें बना लोकमत हुवा अमर।

(९)

कलम लोकमत करने को दौड़ी ले भक्तामर कर में,
सर्व समाज जगाने को अलाप भरे पंचम स्वर में।
ओत बद्ध इकबार आवाज बनाकर रक्खे रसना पर.
भूले बिछुड़े भाव जगें ज्यों देंगे पाठक गण ! उत्तर।

(१०)

अतिशय क्षेत्र सु कुण्डल पुर के पथ में पड़ता जिला दमोह,
इसी नग्र में लिखे भाव भक्ताम्मर के होकर निर्मोह।
जैन धर्म के अतिशय प्रेमी! हैं सराफ वे जुगल गणेश,
बनी धर्मशाला है उनकी उसमें बैठ लिखे विशेष।

इति समाप्त
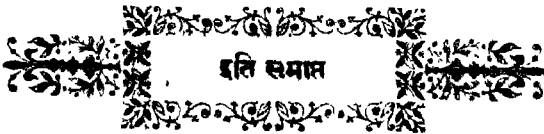
मानतुङ्ग हिंदी काव्य मालाके स्थाई ग्राहकों को

* सूचना *

१ स्थाई ग्राहकों को आठाना प्रवेश फी जमा करने पर माला में प्रकाशित होने वाले कुल ग्रंथ पौनी कीमत में दिये जावेंगे।

नीचे लिखा मजबून कार्ड पर लिखकर ग्राहक हूजिये।

श्रीयुत मैनेजर मानतुङ्ग हिन्दी काव्य माला, जय जिनेश। मैं हिन्दी मानतुङ्ग माला का स्थाई ग्राहक हुआ उसके प्रवेश फी के आठाना मनिआर्डर से भेजता हूं। मेरा नाम स्थाई ग्राहकों की श्रेणी में लिख लेवें और प्रकाशित ग्रन्थ पौनी कीमत में वी. पी. से इस पते पर भेज देवें।

ग्राहक का नाम ग्राम का नाम पोस्ट

जिला

प्रकाशकः—
मानतुङ्ग हिन्दी काव्यमाला

उपदेशक पीताम्बरदास गुप्त
ठि० बांसा, पोस्ट पथरिया।
(दमोह) सी. पी.

* प्राण संरक्षक वटी *

[पेट के सम्पूर्ण रोगों पर]

नर और नारियों को समान लाभ पहुंचाने वाली

सेवन कर परीक्षा कीजिये

तरह २ के क्षार पदार्थों के सेवन करने से अथवा किसी भी प्रकार से जिनकी धातु बिगड़ कर पेशाव व दस्त के साथ गिरती हो व जिन्हें स्वप्न दोष होता हो (स्वप्न में धातु पात हो) और जिनको भयङ्कर अजीर्ण हो रहा हो तथा रोग के कारण जो निर्बल हो रहे हैं उन्हें प्राण संरक्षक वटी अमृत के समान लाभ पहुंचाती है। फी तोला आठाना। इसी पते पर पत्र लिख वी० पी० से मंगाइये।

उपदेशक पीताम्बर दास गुप्त

ग्राम पोस्ट पथरिया

(दमोह)

---

* रोगी पांचों रङ्ग के कपड़े फूल अथवा कांच की शीशी धूप में रखकर देखे कि उसे कौनसा रङ्ग अच्छा और प्यारा लगता है जो अच्छा और प्यारा लगे उसे पत्र में अवश्य लिखे।

भूल संशोधन

(पाठक गण ! नीचे लिखी भूलें सुधार के पढ़ें)

सफा	पद्य का नम्बर	श्रेणी में	अशुद्ध	शुद्ध
५	१४	४	न्यूतन	नूतन
१०	२१	१	हर	हर
११	२३	२	प्रकट करो विज्ञान,	हरण करो अज्ञान
१७	४७	३	भागा	भग
२३	१	३	मुकट	मुकुट
२३	२	३	मुकट	मुकुट
३५	५०	१	पर्यार्य	पर्याय
४०	६७	४	प्रभु	प्रभू
५०	शीर्षक में	२	प्रणेता	प्रणेता
५३	१२	२	भू	नृप
५४	२	२	शिष्यों को दर्शी,	करता जगत हँसी
६८	३५	३	इपहार	उपहार
७५	८३	१	भोज	भोज
७८	टिप्पणी	४	काम	काव्य
८३	१०८	४	धनी	सेठ
९६	१४८	१	चक्रेश्वरिने कालिका,	तेरी वनमें बनीमढ़ी
९६	१४८	२	अहो कालिका	अहो यहां तूं
९६	१४९	१	पद्माकर	पद्मासन
११२	२५	३	हरण मनका	विमल चेतन
११५	३५	४	हुए	हुए
१२१	८	३	आवाज	अवाज

शेंड्ये वैद्य
का
बालजीवन

कमजोर और दुबले बच्चों को ताकतवर बनाता है.

शीशी का दाम बारह आना.

पांडुरंग शिवराम शेंड्ये वैद्य,
(आयुर्वेदाचार्य)

पताः– श्रीगणेश चिकित्साभवन
दमोह, सी. पी.

उपदेशक पीताम्बरदास बांसा पोस्ट पथरिया (दमोह)
के पते पर भी यह शीशी मिलेगी ।